धर्म के नाम पर

लेखक—

आचार्य श्री चतुरसेन शास्त्री,

लालबाग, देहली-शाहदरा।

प्रकाशक—

गोविन्दराम हासानन्द,

प्रकाशक और पुस्तक-विक्रेता, नई सड़क, देहली।

मुद्रक—

पं० जगन्नाथप्रसाद शर्मा,

श्री भानु प्रिन्टिंग वर्क्स, धर्मपुरा, देहली।

सातवीं बार

मूल्य १)

❀ विषय-सूचि ❀

ग्रन्थकार का निवेदन

इस पुस्तक को पढ़ कर मेरे बहुत से मित्र और बुजुर्ग मुझ पर हद दर्जे तक नाराज होंगे। सम्भव है कि मुझे उनकी मित्रता से भी हाथ धोना पड़े, क्योंकि उनमें से बहुतों की आजीविका पीढ़ियों से इस पुस्तक में वर्णित पाखण्डों के द्वारा ही चल रही है। मैं यह सत्य कहता हूँ कि पुस्तक न तो किसी व्यक्ति को लक्ष्य करके लिखी गई है और न इसे लिख कर मैं किसी भी मित्र या अमित्र का अमङ्गल किया चाहता हूँ। इस पुस्तक को लिखने का मेरा उद्देश्य सिर्फ यही है, कि मेरे देश के नवयुवकों के दिमाग इस पाखण्डपूर्ण धर्म से आजाद हो जायं, और वह स्वतन्त्रतापूर्वक जैसे अपने सुसंस्कृत और सुशिक्षित मस्तिष्क से अपने भले-बुरे की और बहुत-सी बातें सोचते हैं, इस विषय पर भी सोचें। क्योंकि मेरी राय में हिन्दुओं की भविष्य नस्ल को—जो इन नव-युवकों की सन्तति होगी, मर्द बच्चा बनाने का एकमात्र यही उपाय है; और मैंने यह राय संसार की महान् जातियों के नाश के इतिहासों का गम्भीरतापूर्वक मनन करके ही कायम की है।

इस लिए मेरे जिन भाइयों का दिल इस पुस्तक को पढ़ कर दुखे; उनके चरणों में सीस नवा कर मैं प्रथम ही क्षमा मांगे लेता हूँ। क्योंकि इन पाखण्डों के बीच में जीवित रह कर मुझे उनसे कहीं अति अधिक दुःख हो रहा है।

दूसरा संस्करण

मुझे यह देख कर हर्ष हुआ कि मेरी इस पुस्तक को लोगों ने चाव से पढ़ा और इसका इतनी शीघ्र दूसरा संस्करण प्रकाशित करना पड़ा। इस संस्करण में पुस्तक को जहां-तहां परिमार्जित कर दिया गया है। आशा है, पाठकगण लाखों की संख्या में इस पुस्तक से लाभ उठावेंगे, और अधिक-से-अधिक इसका प्रचार करेंगे।

दिल्ली,
१०—१०—३४.

विनीत—
चतुरसेन वैद्य।

तीसरा संस्करण

पुस्तक का यह तीसरा संस्करण इस बात का प्रमाण है कि लोग इस धर्म के लिए जो अधर्म है, चिन्तन कर रहे हैं। और वे सच्चे मानव-धर्म की तलाश में हैं। मैं आशा करता हूँ कि पाठक इस पुस्तक को पढ़ कर न रह जायँ। इस मूढ़ धर्म को निर्मूल करने में क्रियात्मक भाग लें, जिसका अब समय आ चुका है।

लालबाग, शाहदरा-दिल्ली
बसन्तपञ्चमी, १९९४ वि०

—चतुरसेन वैद्य।

(१)

धर्म क्या है ?

धर्म ने हजारों वर्ष से मनुष्य जाति को नाकों चने चबाए हैं। करोड़ों नर-नाहरों का गर्म रक्त इसने पिया है, हजारों कुल-बालाओं को इसने जिन्दा भस्म किया है, असंख्य पुरुषों को इसने जिन्दा मुर्दा बना दिया है। यह धर्म पृथ्वी की मानव जाति का नाश करेगा कि उद्धार—आज इस बात पर विचार करने का समय आ गया है।

धर्म के कारण ही धर्म के पुत्र युधिष्ठिर ने जुआ खेला, राज्य हारा, भाइयों और स्त्री को दाव पर लगा कर गुलाम बनाया। धर्म ही के कारण द्रोपदी को पांच आदमियों की पत्नी बनना पड़ा। धर्म ही के कारण अर्जुन और भीम के सामने द्रौपदी पर अत्याचार किए गये और वे योद्धा मुर्दे की भांति बैठे देखते रहे। धर्म ही के कारण भीष्म पितामह और गुरु द्रौण ने पांडवों के साथ कौरवों के पक्ष में युद्ध किया। धर्म ही के कारण अर्जुन ने भाइयों और सम्बन्धियों के खून से धरती को रङ्गा। धर्म ही के कारण भीष्म आजन्म कुंवारे रहे। धर्म ही के कारण कुरुओं की पत्नियों ने पति से भिन्न पुरुषों से सहवास करके सन्तान उत्पन्न की।

धर्म ही के कारण राम ने राज्य त्याग बनोवास लिया। धर्म ही के कारण दशरथ ने राम को बनोवास दिया। धर्म ही के कारण राम ने सीता को त्यागा, शूद्र तपस्वी को मारा और विभीषण को राज्य दिया।

धर्म ही के कारण राजा हरिश्चन्द्र राज्य-पाट छोड़ भंगी के नौकर हुए। धर्म ही के कारण बलि ठगे गये। धर्म ही के कारण कर्ण को अपने कुण्डल और कवच देने पड़े।

धर्म के कारण राजपूतों ने सिर कटाये, उनकी स्त्रियों ने अपने स्वर्ण शरीर भस्म किए, रक्त की नदी बहीं। धर्म ही के कारण शंकर और कुमारिल ने, दयानन्द और चैतन्य ने, कठोर जीवन व्यतीत किए।

आज धर्म के लिए हमारे घरों में तीन करोड़ विधवायें चुप-चाप आंसू पीकर जी रही हैं। ७ करोड़ अछूत कीड़े मकौड़े बने हुए हैं। धर्म ही के कारण पाखंडी, घमंडी और गवंगंड ब्राह्मण भी सर्वश्रेष्ठ बने हुए हैं। धर्म ही के कारण भद्दी और बेहूदी अश्लील मूर्तियां तक पूजनीय बनी हुई हैं। धर्म ही के कारण पत्थर को परमेश्वर कहने वाले पेशेवर गुनहगार पुजारी लाखों स्त्री-पुरुषों से पैरों को पुजाते हैं। धर्म ही के कारण भङ्गी प्रातःकाल होते ही अपनी बहू-बेटियों सहित औरों का मल-मूत्र सिर पर ढोता है। धर्म ही के कारण आज हिन्दू, मुसलमान और ईसाई एक-दूसरे के जानी दुश्मन बने हुए हैं।

धर्म के कारण ही सिक्खों ने मुगल काल में अङ्ग कटवाये, बच्चों को दीवार में चुनवाया। धर्म ही के कारण रोमन-कैथोलिकों

के भीषण अत्याचार की भेंट लाखों ईसाई हुए। धर्म ही के कारण नीरो ने ईसाइयों को मशाल की भांति जलवाया। धर्म ही के कारण मुसलमानों ने पृथ्वी भर को रौंद डाला और मनुष्य के गर्म खून में तलवार रंगी। धर्म के ही लिए ईसाइयों ने प्राण का विसर्जन किया।

आज धर्म के लिए सिपाही युद्ध-क्षेत्र में सन्मुख के मनुष्यों को मारता है। धर्म ही के कारण वेश्याएँ अपनी अस्मत बेचती हैं। धर्म ही के कारण क़साई पशु-वध करता है। धर्म ही के कारण जीव-हत्या करके मन्दिरों में बलि दी जाती है।

मैं जानना चाहता हूँ कि सारी पृथ्वी में हज़ारों वर्ष से ऐसे उत्पात मचानेवाला, यह महाभयानक धर्म क्या वस्तु है? यह क्यों नहीं मनुष्य को मनुष्य से मिलने देता? क्यों नहीं मनुष्य को शान्ति से रहने देता? क्यों नहीं मनुष्य को आज़ाद होने देता? इसने शैतान की तरह दिमाग़ को गुलाम बना लिया है। जो मनुष्य जिस रङ्ग में रङ्गा गया, उसके विरुद्ध नहीं सोच सकता—प्राण दे सकता है। यह है इस प्रबल शक्तिशाली धर्म की करामात!

वेश्या समझती है, कसब करना ही हमारा धर्म है, विवाहित होकर गृहस्थ बनना नहीं। अछूत समझता है, औरों का मैला ढोना ही हमारा धर्म है, उत्तम वस्त्र पहिनकर उच्चासन पर बैठना नहीं। ब्राह्मण सोचता है, सब से श्रेष्ठ होना ही हमारा धर्म है, किसी की भी प्रतिष्ठा करना नहीं। सिपाही समझता है, जिसकी नौकरी करते हैं, उसके शत्रु का हनन करना ही हमारा धर्म है, दूसरा नहीं। पुजारी समझता है, इस पत्थर को सर्व-सिद्धि दाता

भगवान् समझना ही हमारा धर्म है, इससे भिन्न नहीं। मुसलमान समझता है, काफ़िर को क़त्ल करना ही हमारा धर्म है, दूसरा नहीं। विधवा शमझती है, मरे हुए पति के नाम पर बैठना और सबके अत्याचार चुप-चाप सहना ही उसका धर्म है, उसके विपरीत नहीं। जल्लाद समझता है कि अपराधी को फांसी देना ही उसका धर्म है, इसके विपरीत नहीं। ग़रज़ इस जादूगर धर्म के नाम पर पाप-पुण्य, अच्छा-बुरा, जो कुछ मनुष्य को समझा दिया गया है, मनुष्य उस में विवश होगया है। उससे वह अपने मस्तिष्क का उद्धार नहीं कर सकता।

इस धर्म को भिन्न-भिन्न समयों में भिन्न-भिन्न रीति से लोगों ने मनन किया। बहुत से लोगों ने उसे केवल आध्यात्मिक बताया। बहुतों ने शरीर के साथ भी उसका संसर्ग क़ायम किया। परन्तु जब से मनुष्य ने धर्म शब्द पहिचाना, तब से धर्म के नाम पर—हत्या, पाखण्ड, छल, कपट, व्यभिचार, जुआ, चोरी, हरामखोरी, बेवकूफ़ी, ठगी, धूर्तता, अपराध और पाप सभी प्रशंसा और क्षमा की दृष्टि से देखे गये। इस धर्म का यहां तक बोलबाला हुआ कि धर्म के नाम से ऐसी बहुत सी चीज़ें बेची जाने लगीं जिनका धर्म से कोई सम्बन्ध न था। नदियों में स्नान करना धर्म, चिउंटियों और कीड़ों को खाने को देना धर्म, कपड़ा पहिनना धर्म, ग़रज़—चलना फिरना, उठना, बैठना सभी में धर्म का असर घुसड़ गया।

इस नक़ली, झूठे और निकम्मे धर्म का भाव भी बहुत ऊँचा चढ़कर उतरा। रोम के पोप, मरने वालों से उनके पाप स्वीकृत कराके स्वर्ग के नाम हुण्डी लिखते थे। लाखों रुपये हड़प लेते थे।

गया के पंडे स्त्रियों तक को दान करा लेते थे। काशी और प्रयाग में लोग प्राण तक दे देते थे। परन्तु आजकल धर्म की दर कूड़े-कर्कट से भी गिरी हुई है। मन्दिर के पत्थर के सामने एक पाई फेंक देने से धर्म हो जाता है। फटे कपड़े किसी दरिद्र को दे डालने से भी धर्म हो जाता है। जूठन किसी भूखे को दे देने से भी धर्म होजाता है। किसी खास नदी में एक गोता लगाने, बड़-पीपल के ३, ४ चक्कर लगाने, तुलसी का एकाध पत्ता चबाने, गाय का पेशाब पीने आदि से भी धर्म प्राप्त हो जाता है, एकाध दिन भूखा रहकर फिर भांति-भांति के माल उड़ाने से भी धर्म होता है। माथे पर साढ़े ग्यारह नम्बर का साईनबोर्ड लगाने पर भी धर्म होता है। किसी पाखंडी ब्राह्मण को आटा दाल दे देने, कुछ खिला-पिला देने या किसी भिखारी को एकाध धेला-पैसा दे देने से भी धर्म होता है।

रास्ते चलते किसी सिन्दूर लगे पत्थर को सिर नवा देने से भी धर्म होता है। अगड़म-बगड़म कोई खास श्लोक जिसे कोई भी पाखंडी बता सकता है, जाप करने से धर्म होता है। नहाने से धर्म होता है, नङ्गा बैठ कर और मेंढक की तरह उछल कर चौके में जाकर खाने से धर्म होता है। रात को न खाने से धर्म होता है। हाथों से बाल नोचने से, गन्दा-पानी पीने से मल-मूत्र जमीन में गाड़ देने से धर्म होता है। मनों घी और सामग्री को अग्नि में फूंक देने से भी धर्म होता है।

अरे अभागे मनुष्यो! जरा यह भी तो सोचो— धर्म आखिर क्या बला है? तुम उसके पंजे में क्यों फंसे हुए हो? जातियों की जातियों का इस धर्म-संघर्ष में नाश हो गया, पर धर्म को मनुष्यों

ने न पहचाना। बौद्धों ने सारी पृथ्वी को एक बार चरणों में झुकाया; पीछे उन्होंने रक्त की नदियां बहाईं और अन्त में नष्ट हुए। ईसाइयों ने भी मनुष्यों में हाहाकार मचाया। मुसलमानों ने शताब्दियों तक मनुष्यों को सुख की नींद न सोने दिया। धर्म मनुष्य जाति के हृदय पर पर्दा बना खड़ा है पर मनुष्य उससे सचेत नहीं होता, सावधान नहीं होता!

ईसाइयों और मुसलमानों के धर्म-शास्त्र की चर्चा मैं छोड़ता हूँ। मेरी इस पुस्तक का सम्बन्ध केवल हिन्दुओं के धर्म से है, मैं हिन्दू-धर्म की पुस्तकों पर ही अधिकतर कुछ कहना चाहता हूँ। हिन्दुओं की धर्म-पुस्तकों के मुख्य तीन विभाग हैं। प्रथम विभाग में वेद, उपनिषद् और सूत्र ग्रन्थ, दूसरे विभाग में स्मृतियां और तीसरे में पुराण हैं। यद्यपि हिन्दू जाति इन सभी पुस्तकों को धर्म-ग्रन्थ मानती है, परन्तु इन सब में अनन्त मत-भेद हैं; और इसी का यह फल है कि हिन्दू जाति धार्मिक दृष्टि से इतने भागों में विभक्त है कि जितने भागों में पृथ्वी की कोई भी जाति नहीं। प्रत्येक के पृथक-पृथक विश्वास हो रहे हैं। अकेले वेद और उसके साहित्यको धर्म-ग्रन्थ माननेवालों के सम्प्रदायों की ही गिनती करना कठिन है। स्मृतियों का काल, वर्णन, सब एक दूसरे के प्रतिकूल हैं, और पुराणों का तो हाल यह है कि उनसे वेद और प्राचीन साहित्य से प्रत्यक्ष में कोई तारतम्य ही नहीं दिखाई पड़ता। इनमें जिस ने जिस सम्प्रदाय को माना—वही उसका विश्वासी होगया। इन भिन्न-भिन्न सम्प्रदाय, विश्वास और भावना के अधिकारियों के आचार-विचार भी भिन्न-भिन्न हैं। कुछ लोग वेद को अपौरुषेय

और यज्ञपरक मानते हैं। उनके मत में वेद ज्ञान का भण्डार और ईश्वर-कृत है। कुछ लोग वेद को अपौरुषेय किन्तु यज्ञपरक मानते हैं। उनका मत है कि वेद ईश्वर-कृत हैं और उसमें ज्ञान नहीं—यज्ञ के उपयोगी मन्त्र मात्र हैं। उन मन्त्रों के अर्थों से कुछ मतलब नहीं, केवल मन्त्रों में कुछ शक्तिशाली प्रभाव है जो फल देता है। कुछ लोग वेदों को ऋषियों द्वारा प्रणीत और ऐतिहासिक वस्तु मानते हैं। अन्ततः वेदों को यज्ञपरक मानने वाले हिन्दू जाति में अधिक हुए हैं। सायण और महीधर जैसे भाष्यकार और निरुक्तकार भी इस मत के हुए। एक समय ऐसा आया कि यज्ञ ही हिन्दुओं का सर्वोपरि हो गया और सैकड़ों वर्ष तक चला। उस यज्ञ में क्या-क्या पाप पुण्य न हुए। यज्ञों के लिए घोड़े छोड़े जाते, युद्ध होते, राजाओं को व्यर्थ आधीन किया जाता, यज्ञ के लिए दिग्विजय की जाती, रक्त की नदियां बहाई जातीं। यज्ञों में राजा करोड़ों की सम्पदा ब्राह्मणों को दान करके भिखारी तक बन जाते थे। पीछे यज्ञों में पशु-वध हुए। और भी भयानक स्थिति तो तब हुई, जब यज्ञ-विधान तान्त्रिकों के हाथ में आए और मारण, मोहन, उच्चाटन, वशीकरण आदि तथा भैरव, भैरवी, चंडी, काली कराली की सिद्धियां भी यज्ञों द्वारा ही सिद्ध की जाने लगीं।

यज्ञों का विरोधी दल उपनिषदों का भक्त-मंडल रहा। उसने कर्मकांड को धर्म का काम मानने से इन्कार कर दिया। वह केवल मनन करने, ज्ञान प्राप्त करने और ज्ञानी होने ही को धर्म मानने लगे। ऐसे लोग एकान्तवासी, त्यागी तपस्वी और मुनि बने। ये दोनों ही दल समय-समय पर खूब ही संघर्ष करते रहे।

बौद्धों के उदय के साथ हिन्दुओं का यज्ञ करने वाला धर्म दब गया था। वह फिर उभरा और तब यज्ञ नष्ट हो गए। यज्ञों के स्थान पर मूर्तियों की पूजा हिन्दुओं का सर्वोपरि धर्म बन गया। उस मूर्त्ति-पूजा में भी शैव, वैष्णव और शाक्त तीन प्रधान सम्प्रदाय हुए। तीनों परस्पर शत्रु और आचार-विचार में एक-दूसरे के सर्वथा विरोधी रहे।

तत्त्ववेत्ता और दार्शनिक लोगों की मध्य-युग में खूब धाक रही और इन्होंने धर्म के नियमों को प्रायः उच्छृंखल रीति से समझा, तर्क और विवेक के चक्र-व्यूह में बुद्धि को घुमाया। इसमें सब से अधिक चमत्कार योगशास्त्र ने प्रकट किया। योग के अद्भुत और अव्यवहारिक चमत्कारों पर आज भी पृथ्वी के मनुष्य विश्वासी हैं। एक हद तक योग भी उच्च कोटि का धर्म बन गया। जो कोई भी योगी हो सकता है, उसके लिए यह निर्विवाद बात है कि वह पूर्णतया धर्मात्मा और ईश्वरभक्त है और मुक्ति का अधिकारी है।

स्मृतियां सूत्र-ग्रन्थों के आधार पर बनीं। धर्म-सूत्र और गृह-सूत्र बनते ही गये, जब तक यज्ञों के प्रपंच बढ़ते गए। पीछे तो इन स्मृतियों ने अनगिनत जातियां, अनगिनत आचार, तथा अनगिनत लोकाचार मनुष्य-समाज में उत्पन्न कर दिए।

पुराणों ने अन्तिम प्रभाव पैदा किया, और भिन्न-भिन्न प्रकार के महात्म्य, श्रद्धा पैदा करने वाली कहानियां, नये-से-नये ढकोसले और बे सिर-पैर की बातें धर्म सम्पुट की भाँति उनमें भरदीं। लोग अन्धविश्वास और अज्ञान के पूर्ण वशीभूत हो गए।

इन सभी धर्म ग्रन्थों में कुछ न था, यह मेरा कहना नहीं है। पुराणों से इतिहास की अप्रतिम सामग्री आज भी हमें उपलब्ध हो सकती है। तर्क, मीमांसा, योग और साँख्य में बहुत बुद्धिगम्य बातें हैं। परन्तु यदि कोई वस्तु नहीं है तो धर्म। इन सभी धर्म-ग्रन्थ कहाने वाली पुस्तकों ने यदि किसी विषय में हमें अन्धा और गुमराह बनाया है तो केवल धर्म के विषय में।

तब धर्म क्या चीज है ? जैसा कि हम कह चुके हैं—भङ्गी का धर्म पाखाना साफ करना, वैश्या का कसब कमाना, और विधवा का मरे पति के नाम पर बैठी रोया करना धर्म है। उस धर्म की हम चर्चा नहीं करते। धर्म-शास्त्रों में धर्म की कैसी व्याख्या है, इस पर थोड़ा प्रकाश डालना चाहते हैं।

मनुस्मृति कहती है कि धीरज, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रिय-निग्रह, बुद्धि, विद्या, सत्य, अक्रोध ये धर्म के दस लक्षण हैं। इन दशों में सिपाही का धर्म हिंसा तो नहीं आया। इसमें सत्यासत्य की व्याख्या भी नहीं कीगई। अब इस श्लोक में वर्णित लक्षणों को बुद्धि की कसौटी पर कस कर हम देखते हैं।

सब से प्रथम सत्य को लीजिये। सत्य धर्म का लक्षण है। मैं सत्य बोलने का व्रत लेता हूँ। मेरे पास १० हजार रुपये जमीन में अत्यन्त गोपनीय तौर पर गड़े हैं, उनका पता चलना भी सम्भव नहीं। हजार-पांच सौ ऊपर भी मेरे पास हैं। एक दिन चोर ने गला आ दबाया। कहा—"जो है रखदो, वरना अभी छुरा कलेजे के पार है।" अब आप कहिये क्या मुझे सत्य कह देना चाहिये कि इतना यह रहा और १० हजार वहां जमीन में गड़ा है ? मेरी

राय में ऐसा सत्य महामूर्खता का लक्षण होना चाहिये। जब दुर्योधन की मृत्यु का समाचार धृतराष्ट्र ने सुना, तो उन्होंने पूछा–वह भीम कैसा बली है जिसने मेरे बेटे दुर्योधन को मार डाला! उसे मेरे सन्मुख लाओ। मैं उसे छाती से लगा कर प्यार करूंगा। तब कृष्ण ने उनके सामने लोहे की मूर्त्ति सरका दी, जिसे बलपूर्वक इस भांति अन्धे धृतराष्ट्र ने मसल डाली कि सचमुच यदि भीमसेन उनके हाथ में चढ़ गये होते तो उनकी चटनी बन जाती। अब मैं यह पूछता हूँ कि यहां छल करके कृष्ण ने अधर्म किया या धर्म?

हिंसा की बात भी विचारनी चाहिये। मैं एक चींटी को मार कर हत्यारा कहाता हूँ, परन्तु एक सिपाही असंख्य मनुष्यों को बध करके भी वीर कहाता है। क्यों? युद्ध में भी तो हत्या होती है। ऐसी हत्याएं करने वाले, पापी, अधार्मिक क्यों नहीं?

इसी प्रकार प्रत्येक लक्षण को हम यदि कसौटी पर कसें तो हम धर्म के इन दस लक्षणों पर निर्भर नहीं रह सकते।

दर्शन-शास्त्र बताते हैं "यतो अभ्युदयः निःश्रेयस सिद्धिः सधर्मः" जिस काम के करने से अभ्युदय और निःश्रेयस दोनों की प्राप्ति हो वही धर्म है। अभ्युदय का अर्थ है ऐहिलौकिक सर्वोच्च सुख, जिस में सब प्रकार की व्यक्तिगत और सामूहिक स्वाधीनता, अधिकार प्रणाली, जीवन तारतम्य की धाराएं आ गईं। निःश्रेयस का अर्थ है– पारलौकिक सर्वोच्च स्थिति अर्थात् मुक्ति। मुक्ति का अर्थ यह है कि जीवन के अन्तस्तल में मनुष्य की सब वासनाएं और इच्छाएं तृप्त हो जायें। उसका मन सब वस्तुओं से विमुक्त हो

जाये। उसके सब बन्धन नष्ट हो जायें। वह जन्म न धारण करे। यही मुक्ति है।

मुक्ति के लिये मनुष्य को ऐहिलौकिक कर्म इस भावना में करने अनिवार्य हैं कि वह उनमें तनिक भी लिप्त न हो; और ऐसा व्यक्ति अभ्युदय की प्राप्ति नहीं कर सकेगा। इसीलिये ऐसे मनुष्य-जो मुक्ति की भावना के लिए ही ऐहिलौकिक सब स्वार्थों और दायित्वों को त्याग कर चले, वह धर्म का रक्षक नहीं, धर्मात्मा भी नहीं। और ठीक उसी प्रकार जो कोई ऐहलौकिक भावनाओं में फंसकर मुक्ति की धारणा से च्युत हो जाय, वह भी धर्मात्मा नहीं। धर्मात्मा वह है जो इस भांति आचरण करे कि दोनों भावनाएं समान भाव से उसके साथ रहें।

सारी पृथ्वी पर एक कृष्ण ही ऐसा महापुरुष जन्मा—जिसने दोनों भावनाओं को साङ्गोपाङ्ग निभाया। वह चरम कोटि का भोगी और चरम कोटि का योगी प्रसिद्ध है। उसकी वीतरागता और भाषा से अलिप्त रह कर माया का उपभोग करने के कौशल को आज हजारों वर्ष से असंख्य विद्वान् समझने की चेष्टा कर रहे हैं—पर समझ नहीं पाते।

तब धर्म क्या है ? हमारी राय में धर्म वह है, जिससे मनुष्य मनुष्य के प्रति उत्तरदायी हो, प्राणीमात्र के प्रति उत्तरदायी हो। धर्म वह है, जिसके आधार पर मनुष्य अधिक से अधिक लोकोपकार कर सके। धर्म वह है, जिससे हृदय और मस्तिष्क का पूरा विकास हो। दया धर्म है, प्रेम धर्म है, सहनशीलता धर्म है, उदारता धर्म है, सहायता धर्म है, उत्साह धर्म है, त्याग धर्म है।

हे हिन्दू जाति के आशास्तम्भों! हे मेरे प्यारे नवीन कुमारो और कुमारिकाओ! इस नवीन धर्म को हृदयंगम करो—जिससे तुम्हारा मस्तिष्क और हृदय कमल पुष्प की भाँति खिल जाय और तुम मन से, वचन से, और कर्म से किसी के गुलाम न रहो। धर्म वह है जो स्वाधीनता, प्रकाश, और जीवन दे। धर्म वह है जो जातियों को संगठित करे, प्राणियों को निर्भय करे, जीवन को सुखी और सन्तुष्ट करे। धर्म के ढकोसलों को त्यागो, नवीन धर्म को ग्रहण करो, तुम्हें आनन्द प्राप्त होगा।

इस बात की परवा न करो कि तुम्हारी इस स्वतन्त्र भावना में तुम्हारे बुजुर्ग लोग बाधा देंगे। मैं कहता हूँ कि तुम उनकी आज्ञाएं मानने से इन्कार करदो, जिन्हें तुम अपनी दृष्टि से मूर्खतापूर्ण, अव्यवहारिक और अपनी आत्मा की आवाज के विपरीत समझते हो। प्राचीन विद्वानों का मत है कि गुरुजनों की उन्हीं आज्ञाओं का पालन करना चाहिये जो नीति और धर्म के अनुकूल हों, और तुम्हारी आत्मा की गंभीर आवाज भी उसका अनुमोदन करे।

———

(२)

सदुपयोग और दुरुपयोग

मेरा कहना यह है कि हिंसा कोई पाप नहीं है और अहिंसा कोई धर्म नहीं है। इन दोनों वस्तुओं का सदुपयोग धर्म और दुरुपयोग पाप है। एक जज अपराधी को फांसी की आज्ञा देता है। अपराधी ने उसका कुछ नहीं बिगाड़ा। अपराधी से वह परिचित भी नहीं है। अपराधी पर वह क्रुद्ध भी नहीं। वह न्याय और शान्ति के अधिपति के पद पर बैठा है। वह बहुत गम्भीरता और विवेचन से यह देखता है कि अपराधी सार्वजनिक शान्ति के लिये, वर्तमान समाज के नियमों के आधार पर विघ्न करता है या नहीं; और जब वह उसे ऐसा पाता है तो अपने उन बँधे हुए अधिकारों के आधार पर, जो उसे उसी पद के कारण ही प्राप्त हैं, अपराधी को मृत्यु तक फाँसी पर लटकाये जाने की आज्ञा देता है। समय पर जेल-अधिकारी और जल्लाद उसे फांसी देकर मार डालते हैं। जज, जेल-अधिकारी, जल्लाद सभी को उस व्यक्ति से समवेदना होती है। इसलिए वे लोग हिंसक होते हुए भी पापी नहीं समझे जाते।

मैं स्वयं भी जज का स्थान ले सकता हूँ। एक व्यक्ति ने मेरा वही अपराध किया है जो हर तरह जज की दृष्टि में अपराधी को

फांसी का अधिकारी निर्णय करेगा। मैं स्वयं भी जज के बराबर ही बुद्धिमान और योग्यता सम्पन्न व्यक्ति हूँ। मैंने स्वयं ही उसे फांसी देदी। जेल के और जल्लादों के प्रपंचों में भी मैं नहीं पड़ा। ऐसी दशा में मैं हिंसक और पापी हूँ।

क्यों ? सुनिये ! पहिली बात तो यह कि मैं न्याय करने का अधिकारी नहीं; यह मेरा काम न था। दूसरे, सिर्फ़ घटना का सम्बन्ध मेरे साथ था। इसलिये मैंने यह न्याय अपने हाथ में ले लिया। ऐसा करने में मन में राग द्वेष तो था ही। तीसरे, आज मैंने लिया कल दूसरा लेगा। उसे मेरा उदाहरण काफी है। उसे मेरी योग्यता से कोई सरोकार नहीं। अपराधी को क़ब्ज़े में करके फांसी देने की योग्यता तो उस में है। चौथे, अपराधी और उसके संरक्षकों को अपील का स्थान नहीं। मैं स्वयं ही आरोपी और स्वयं ही अधिकारी बन गया। इसलिए मैं संयत, विवेकी, और सत्य पर स्थिर नहीं रह सकता। अतः मैं हत्याकारी हूँ और पाप का भागी हूँ।

मुसलमानों के पूज्य हज़रत अली एक बार एक अपराधी को क़त्ल करने लगे। जब वे तलवार लेकर अपराधी के पास आये तो अपराधी ने क्रोध में भर कर उन्हें गालियाँ दीं और उन पर थूक दिया। इस पर अली को गुस्सा आ गया। उन्होंने तलवार रख दी और कहा—इस वक़्त मैं इसे क़त्ल नहीं कर सकता, क्योंकि मुझे गुस्सा आ गया है।

यह उदाहरण इस बात पर प्रकाश डालेगा कि वास्तव में हत्या या हिंसा में निर्भयता किस दर्जे तक उसे पुण्य बनाती है।

आपके पास एक घोड़ा है उसकी शक्ति का आप सदुपयोग कीजिये, वह आपकी गाड़ी को खींच कर जहाँ आप चाहें ले जायगा। और दुरुपयोग होने पर वही घोड़ा गाड़ी को गिरा कर चकनाचूर कर देगा।

मैं सत्य बोलना पसन्द करता हूँ। मैं सत्य को धर्म समझता हूँ, परन्तु मैं चिकित्सक हूँ। एक रोगी को देखने मैं गया। उसका हृदय बहुत दुर्बल है और उसकी हालत अच्छी नहीं है। अब यदि उसे उत्साह और साहस नहीं मिलता है तो वह तत्काल मर जा सकता है। उसे देखकर मैं चिन्तित होता हूँ; परन्तु ऊपर से हँस कर लापरवाही दिखाता हूँ। रोगी से गप-शप करता हूँ, हँसता हूँ, और उसे अतिशीघ्र आरोग्य लाभ होने की आशा दिलाता हूँ। यह सब बिलकुल झूठ है, परन्तु पाप नहीं। मैं इसे धर्म समझता हूँ, और इसका कारण यह है कि इस झूठ में मेरा कोई स्वार्थ नहीं। केवल परोपकार की भावना ही है।

पिछले अध्याय में मैंने चोर का उदाहरण दिया है। अब मैं फिर आप से पूछता हूँ कि चोर को सत्य के नाम पर गड़ा हुआ गुप्त धन बता देना धर्म है या बेवकूफी? सब लोग यही कहते हैं कि धर्म की परीक्षा यह है कि वह सदा सज्जनों की रक्षा करे और दुष्टों का दमन करे। तब वह 'सत्य' धर्म कहाँ रहा जो चोर को तो माल दिलवाए और मालिक को लुटवा दे? वहाँ तो झूठ बोलना ही धर्म है।

एक सिपाही दर्प से अपने को योद्धा कहता है। उसे शत्रुओं के हनन करने का गर्व है। जब वह खून की नदी बहा कर आता है,

लोग गाजे-बाजे से उसका सत्कार करते हैं। वह वीर की भांति ऊँची गर्दन करके सब के बीच में चलता है। मैं पूछता हूँ—किस लिए उसकी हत्या हिंसा नहीं मानी गई, पाप में नहीं सम्मिलित की गई? इसमें क्या युक्ति है?

इसका उत्तर वही है जो मैं कह चुका हूँ। उसकी उस खून-खराबी में सार्वजनिक शान्ति की भावना है। वह मानव जाति के प्रति कुछ त्याग का भाव रखकर ही यह कार्य करता है। यहाँ हम उस विषय पर न जायँगे कि उसका यह भाव ठीक है या नहीं।

और भी अनेक ऐसी बातें हैं कि जिनका सदुपयोग ही धर्म कहा जाता है। महाभारत में विश्वामित्र ऋषि का चांडाल के घर में घुसकर कुत्ते का सूखा मांस चुराने की बड़ी मजेदार घटना है। जब ऋषि वह सूखी हुई टाँग चुराकर चलने लगे, तब चांडाल जग उठा और ऋषि को पहचानकर बहुत भला-बुरा कहा। इस पर ऋषि तनिक भी न झेंपे। उन्होंने चांडाल को ऐसा आड़े हाथों लिया कि बेचारे की बोलती बन्द हो गई। उन्होंने कहा—"अरे, ढीठ! तू मुझे उपदेश देने का साहस करता है? मैं जो कुछ करता हूँ उसे खूब समझता हूँ, और मैं अवश्य करूँगा।"

जहाँ एक तरफ़ ऐसी कुत्सित और बीभत्स चोरी—ऐसे बड़े महात्मा द्वारा की जाने पर भी दोषपूर्ण नहीं मानी गई, वहाँ हम महाभारत ही में एक दूसरी घटना पाते हैं।

शंख और लिखित दो भाई थे। शंख ज्येष्ठ था। दोनों ऋषि थे। दोनों के आश्रम पृथक्-पृथक् थे। लिखित भाई से मिलने उनके

आश्रम में गये। भाई बाहर गये हुए थे। लिखित ने आश्रम से एक पक्का मधुर फल तोड़ा और खाने लगे। इतने ही में शंख आ गये। शंख ने देख कर कहा—अरे! यह तुमने क्या किया?

लिखित ने हंस कर कहा—यहीं से तोड़ा!

शंख ... होकर कहा—यह तो बुरा हुआ, अरे! यह तो चोरी हुई।

लिखित ने व्याकुल होकर कहा—क्या यह चोरी हुई?

शंख ने दु:खी होकर कहा—नि:सन्देह! तुम अभी राजा सुधन्वा के पास जाओ और दण्ड की याचना करो।

लिखित उसी समय सुधन्वा की ड्योढ़ियों पर पहुँचे। ऋषि का आगमन सुनकर उन्होंने मन्त्रियों सहित द्वार पर आकर उन का सत्कार किया और भीतर ले गये। कुशल पूछा, पूजा की और हाथ बाँधकर कहा—ऋषिवर! आज्ञा से कृतार्थ कीजिये।

ऋषि ने कहा—राजन! मैंने चोरी की है, मुझे दण्ड दीजिये। उन्होंने सब घटना भी सुना दी। राजा ने सुनकर कहा—ऋषिवर! राजा को अभियोग सुनकर अपराधी को अपराध के गुरुत्व पर विचार करके जैसे दंड देने का अधिकार है, वैसे ही उसे क्षमा करने का भी। मैं आपको क्षमा करता हूँ। ऋषि ने कहा— नहीं राजन, मैं दंड की याचना करता हूँ। तब राजा ने विवश हो राज-नियमानुसार ऋषि के दोनों हाथ कटवा दिये। तब लिखित खून से टपकते दोनों कटे हुए हाथों को लिये भाई के पास जाकर बोले—भाई, मैंने राजा से दंड प्राप्त कर लिया है; अब आप भी क्षमा कर दीजिये।

यह छोटी-सी हृदय को हिला देने वाली घटना इस बात पर प्रकाश डालती है कि अकारण एक फल भाई के बाग से बिना आज्ञा तोड़कर खाना कितना गुरुतर अपराध है, और सकारण चांडाल के घर से सूखा कुत्सित मांस चुराना भी अपराध नहीं, प्रत्युत कर्तव्य है।

इन सब बातों के अलावा कुछ ऐसी बातों का दुरुपयोग होता रहा है जिनका यदि सदुपयोग होता तो अवश्य ही उससे जगत् का कल्याण होता।

उदाहरण के तौर पर दान को लेता हूँ। इसमें तो कुछ भी सन्देह नहीं कि दान-दाता त्याग करता है, और उसका दिया हुआ धन अपेक्षाकृत अधिक लोक-सेवा में लग सकता है। परन्तु भारतवर्ष में दिये हुए दान बहुधा तमोगुण पूर्ण होते हैं। उन्हें दाता लोग किसी संस्था को, किसी विद्वान को, किसी गुणी को, इसलिए नहीं देते कि वह उससे अपना विकास करें। उनके दान प्रायः अंध-श्रद्धा या अन्ध-कूप दान होते हैं। जैनियों ने करोड़ों रुपयों के दान देकर अपने साम्प्रदायिक मन्दिरों की प्रतिष्ठा की है। उसमें हीरे-मोती की प्रतिमाएँ और सोने-चाँदी की दीवारें बनाई गई हैं। क्या मैं यह पूछ सकता हूँ कि दिगम्बर वीतराग सर्व त्यागी महात्माओं की मूर्तियों का इस ऐश्वर्य के प्रदर्शन से क्यों उपहास किया जाता है? क्या वे प्रतिमाएँ मिट्टी की बनाकर चटाई की झोंपड़ी में नहीं पूजी जा सकती? वही जैनी जो दया धर्म को ही प्रधान कार्य समझते हैं, और जिनके धर्म सम्बन्धी नियम बड़े कठिन बड़े विकट और कष्ट-साध्य हैं—और वे बहुत दर्जे तक उनका पालन

भी करते हैं, और ऐसे लोग जो नित्य मन्दिर में जाते, भक्ति-भाव से पूजा करते, व्रत-उपवास भी करते हैं, परन्तु दूकान पर आकर वे भी धर्म को खूँटी पर रख देते हैं। दूकान पर वे झूठ बोलते हैं, निर्दयीपन भी करते हैं। वे चिउँटियों पर, कीड़े-मकोड़ों पर दया दिखाते हैं। वे लाखों-करोड़ों की सम्पत्ति धर्म खाते लगा देते हैं, पर किसी दरिद्र पावनेदार पर चार पैसे नहीं छोड़ सकते। वे डिग्री करावेंगे कुर्की लावेंगे, और उसके बर्तन तक बिकवाकर अपना पावना सूद सहित लेंगे। यह दया धर्म किस मतलब का है? इस दया-धर्म से जगत का, मनुष्य समाज का क्या उपकार होगा? इन हीरे-पन्ने की मूर्तियों से, सुनहरी दीवारों से, जगमगाते मन्दिरों से, किसी का क्या भला होगा? यह धर्म लानत भेजने योग्य है—यह दया और श्रद्धा का भयानक दुरुपयोग है!!

मारवाड़ी समाज ने कुछ उच्च श्रेणी के दाता और देश-सेवक पैदा किये हैं। उन पर मारवाड़ी समाज को ही नहीं, प्रत्युत देश-भर को अभिमान है। परन्तु इन महाशयों के दान क्या सच्चे दान हैं? यह मैं मान सकता हूँ कि ये दान देश में जनता के काम आये हैं? पर जो लोग करोड़ों रुपये कमाने के ढंग बराबर जारी रखकर उसमें से कुछ लाख दान कर देते हैं—उनके दान कभी भी धर्म-दान नहीं कहे जा सकते। ये सब आसुरी दान हैं। क्या सक मनुष्य का करोड़ों रुपये कमाने के साधनों का स्वयं अपने ही लिये उपयोग करना धर्म है? क्या वह करोड़ों रुपये, लाखों मनुष्यों के परिश्रम का बेईमानी और धूर्तता से ठगा हुआ हिस्सा नहीं? जो मिल-मालिक लोग हैं और जिनकी मिलों में हजारों मजदूर काम

करते हैं, उनकी भीतरी दशा देखने ही से दुःख होता है और पाप की कमाई की असलियत खुल जाती है। वे लोग, स्त्री, पुरुष और बच्चे जी तोड़कर, अस्वास्थ्यकर और अवैज्ञानिक परिश्रम करते हैं। स्त्रियों के प्रसव के सुभीते नहीं। उन्हें इतना कम वेतन मिलता है कि वे सुधरे हुए ढंगों पर नहीं रह सकते। यदि उनकी कमाई का हिस्सा एकत्र करनेवाले करोड़पति घमंड से, और उसे अपना धन न समझ दो-चार लाख का दान न करके इन्हीं मज़दूरों का वेतन चौगुना कर दें तो वे कहीं ज्यादा पुण्य के भागी हैं। क्योंकि यह रुपया तो उन्हीं की कमाई का है। यदि वे न कमावें तो पूँजी के द्वारा कोई भी धन-पति रुपया नहीं कमा सकता। उस पर उन का अधिकार है। परन्तु कैसे मजे की बात है कि वे कमानेवाले मज़दूर लोग तो कुत्तों की तरह मैले-कुचैले, भूखे-नंगे और संसार के सब भोगों से रहित होकर जीवन व्यतीत करते हैं और उनकी कमाई को हड़पनेवाले उनके रुपयों से सुनहरी दीवारों के मन्दिर बनवाते हैं—जिसमें हीरे और पन्नों की प्रतिमाएँ रहती हैं।

अफ़सोस तो यह है कि इन स्वार्थी, ठगों और लुटेरे अमीरों के दाँतों में उँगली डालकर ग़रीबों के हक़ के पैसे निकालने वाले अभी देश में नहीं पैदा होते। सेठ मोटेमलजी ने एक लाख रुपया अछूतोद्धार के लिए दिया, उन्हें धन्यवाद है। अख़बारों में मोटे हेडिङ्ग छपते हैं। पर कोई सम्पादक यह नहीं पूछता कि यह रुपया देने में उन्होंने कुछ त्याग भी किया है? उन्हें कुछ कष्ट भी इससे हुआ है? क्या उन्होंने अपने रहने की कोठी बेच कर दिया है, या स्त्री के निकम्मे गहने बेचकर, या अपना अनावश्यक फर्नीचर बेच

कर ? हम तो देखते हैं कि सट्टे में बीस लाख कमाया। एक लाख दे दिया। वाह-वाही लूट ली!

अजी, मैं यह पूछता हूँ कि मैं डाका डालकर, खून करके या और कोई जालसाजी करके कहीं से दस-बीस लाख रुपया ले आऊँ तो उसमें लाख-पचास हज़ार रुपये दान कर देने से मुझे क्या धर्म होगा ? मेरा पाप नष्ट हो जायगा या नहीं ? यदि नहीं होगा तो इन चालाक अमीरों के दान भी धर्म खाते नहीं समझे जावेंगे, और उनके अपराधपूर्ण आमदनी के ज़रिये कभी क्षमा की दृष्टि से नहीं देखे जावेंगे।

बड़े-बड़े व्यापारियों के यहाँ, कलकत्ता, बम्बई और दिल्ली में एक धर्मादा खाता होता है। वे व्यापारी जितने रुपये का माल ग्राहकों को बेचते हैं। उनसे धर्मादा भी कुछ लेते हैं। यह यद्यपि उनकी गाँठ का नहीं होता, पर उसे स्वेच्छा-पूर्वक खर्च करने का उन्हें पूर्ण अधिकार होता है। और क्या आप कल्पना कर सकते हैं कि यह रुपया किस काम में खर्च किया जाता है ? वे बेईमान धूर्त अमीर उससे अपनी बेटी का ब्याह करते हैं। मरे हुए माता-पिता का कारज करते हैं। मैंने स्वयं ऐसे उदाहरण देखे हैं। यह धन लाखों रुपये की संख्या में एकत्र हो जाता है।

सत्यवादी हरिश्चन्द्र का उदाहरण लीजिये। आज तक लोग लाखों वर्ष से इस सत्यवादी राजा के दान की प्रशंसा करते, और उसकी रानी के कष्टों पर आँसू बहाते आये हैं। परन्तु मैं यह जानना चाहता हूँ कि इस राजा को अपना समस्त राज्य एक भिक्षुक को दे डालने का क्या अधिकार था मुझे इससे कोई बहस

नहीं कि वह भिक्षुक ऋषि-श्रेष्ठ विश्वामित्र थे— और इन्द्र के भेजे हुए उसकी परीक्षा के लिये आये थे। मैं तो इस बात पर विचार करना चाहता हूँ कि क्या राजा को इस बात का अधिकार होना चाहिये कि वह चाहे भी जिसको अपना राज-पाट दान करदे? फिर भिक्षुक की इस निर्दयता की भी कहीं निन्दा नहीं की गई कि उसने दक्षिणा के लिये उसे और उसकी स्त्री-पुत्र तक को विकवा दिया। मैं यह भी जानना चाहता हूँ कि यदि मैं स्वीकार करलूँ कि राजा को ऋषि का क़र्ज़ा चुकाना ज़रूरी था—तो क्या अपनी स्त्री और पुत्र को बेचकर क़र्ज़ा चुकाना उनका धर्म था? क्या मैं इस बात को स्वीकार करलूँ कि भविष्य में जब कभी कोई निर्दयी ज़ालिम क़र्ज़दार मेरी गर्दन पर सवार हो तब मैं अपनी स्त्री को और बच्चे को बाज़ार में बेच दूँ—यही मेरा धर्म है? मेरी स्त्री और बच्चे गोया अपना कोई व्यक्तित्व ही नहीं रखते। मैं इस पुस्तक के पाठकों से पूछता हूँ कि उनमें कितने ऐसे हैं जो ऐसे मौक़े पर इस धर्म का पालन करेंगे, अपनी स्त्री और बच्चे को बीच-बाज़ार बेच देंगे?

राज्य राजा की सम्पत्ति है या राष्ट्र की, इसका फैसला तो आज पृथ्वी भर की जातियां मिलकर कर ही रही हैं। शीघ्र ही लोहू की लाल नदियां एशिया और योरप के मैदानों में बहने वाली हैं, पर यह हमारी चर्चा का विषय नहीं। मैं तो यह कहना चाहता हूँ कि राजा हरिश्चन्द्र का इस प्रकार भिखारी को राज्य दान देना, और अपनी स्त्री-पुत्र को बाज़ार में इस प्रकार बेच देना—अक्षम्य अपराध है।

इससे भिखारियों के प्रति लोगों के असाधारण अधिकार के भाव उत्पन्न हो गये हैं। और भिखारी भी धृष्ट हो गये हैं। मैं समझता हूँ आज हजारों वर्ष से भिखारी लोग राजाओं और सर्व-साधारण को कर्ण और हरिश्चन्द्र के उदाहरण देकर बढ़ावा देकर बेवकूफ बनाते और ठगते रहे हैं।

मैं फिर कहता हूँ, देश के व्यापारी जो अपनी भयानक मशीनों और रहस्यपूर्ण बही-खातों तथा पापपूर्ण सट्टों और जुआ-चोरियों के द्वारा करोड़ों रुपये कमाते और उनमें से लाखों दान करते हैं, वे कभी भी धर्म के अधिकारी नहीं, क्षमा के योग्य भी नहीं! मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि वे व्यापारी देश के पुत्र नहीं, देश के साथ उनकी कोई सहानुभूति भी नहीं। देश के दुःख के साथ उन का दुःख और देश के सुख के साथ उनका सुख भी नहीं। वे विदेशी सरकार की भांति, तस्मे के लिए भैंस हलाल करने वाले निर्दयी स्वार्थी हैं। हाल ही में रुई, घी, अन्न, सस्ते होने पर ये लोग सिर पीटने लगे और इनके पेट फट गये। ये लोग महंगाई बने रखने को सभी सद्-असद् उपाय काम में लाते रहते हैं। आज देश सरकार की स्वार्थान्धता को भी नहीं सहन करता तो इन पतली दाल खाने वालों को योंही कैसे छोड़ देगा? ये घरेलू चूहे हैं जो स्वयं क्षुद्र होने पर भी सिर्फ कुतर-कुतर कर देश की महान् हानि कर रहे हैं।

ये श्रीमन्त व्यापारी केवल बड़े-बड़े दान करके देश के भाई या धर्मात्मा नहीं बन सकते। इनके लाखों रुपये के ये दान उस पाप की कमाई का हिस्सा है जो सट्टा, सूद, हरामीपन और गरीब

के पसीने से निचोड़ी हुई है। प्राचीन रजवाड़ों में राजा लोग डाकू लोगों से लूट का भाग लिया करते थे और वह रकम पाकर उनकी तरफ से आंख मीच लिया करते थे। ऐसे दानों को ग्रहण करने वाले भी उसी श्रेणी के हैं। ऐसे धन को दान करने वाले तो पापिष्ठ हैं ही, ग्रहण करने वाले भी धर्म-हीन हैं। धर्मग्रन्थों में यह बात भी विचार से लिखी पाई गई है कि धर्मात्मा को किस-किस का धन, अन्न, और आतिथ्य स्वीकार करना चाहिये। तेजस्वी लोग कभी अन्याई का दान और आतिथ्य नहीं स्वीकार करते। महापुरुष कृष्ण ने जिस वीरता से दुर्योधन का राजसी स्वागत और आतिथ्य अस्वीकार करके धर्मात्मा विदुर का दरिद्र आतिथ्य स्वीकार किया था, यह बात विचारने के योग्य है।

यदि कोई अमीर अपने सतखंडे महलों को सामने खड़ा हो कर ढहा दे, या उन्हें अस्पताल बनवा दे, ठाठ-बाट की चीजें, जवाहरात, जेवर जायदाद, सब सार्वजनिक सेवा में दान करदे और भविष्य में देश के साथ मजूरी करके खाये, जैसा कि देश खाता है—वैसे ही घरों में रहे जैसे में देश रहता है और निर्वाह के बाद देश के साथ कन्धे-से-कन्धा मिला कर सार्वजनिक कार्य करे—कटे, मरे, जिये, फले-फूले तो निस्सन्देह वह धर्मात्मा है।

राजा महेन्द्रप्रताप और दर्बार गोपालदास के दान यद्यपि राजनैतिक भावनाओं से परिपूर्ण हैं, पर वे मेरी दृष्टि में धर्म-दान की श्रेणी में हैं।

भाग्यहीन दारा, जब औरङ्गजेब द्वारा पकड़ा जाकर जल्लादों के साथ एक गन्दी और नङ्गी हथिनी पर दिल्ली के बाजारों में घुमाया

गया, जहां वह सदा ही हीरे-मोती लुटाता निकलता था। तब एक भिखारी ने उसे देख कर इस प्रकार कहा—"दारा, ओ बादशाह! तूने हमेशा ही कुछ-न-कुछ मुझे दिया, आज भी कुछ दे।" दारा के पास कुछ न था। वह जो वस्त्र पहने था, उसे उसने उतारा और भिक्षुक को दे दिया!!

महाभारत में एक सुन्दर कथा का उल्लेख है—

जिस समय सम्राट् युधिष्ठिर ने राजसूय यज्ञ समाप्त किया, और विश्व भर की सम्पदा को दान कर दिया, तब उन्हें कुछ गर्व हुआ और कृष्ण से कहने लगे कि महाराज! अब मैं सार्वभौम पद का अधिकारी हुआ!!

भगवान् कृष्ण कुछ न कहने पाये थे कि इतने में एक अद्भुत मामला हुआ। सबने देखा— एक नौला जिसका आधा शरीर सोने का और आधा साधारण है, किसी तरफ से आकर यज्ञ के पात्रों में लोट रहा है। सब लोग परम आश्चर्य से इस जीव को देखने लगे। तब कृष्ण ने कहा—हे कीटयोनिधारी! तुम कौन हो? यक्ष हो कि पिशाच, देव हो या दानव, सत्य कहो। और किस अभिप्राय से पवित्र यज्ञ-पात्रों में लोट रहे हो?

सब को चकित करता हुआ वह जीव मनुष्य-वाणी से बोला— हे महाराज! मैं न यक्ष हूँ न देव, मैं वास्तव में क्षुद्र कीट हूँ। बहुत दिन हुए एक महान् पात्र के अवशिष्ट जल में मुझे स्नान करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। उस पवित्र जल से मेरा आधा शरीर भीगा था, उतना ही वह सोने का हो गया। मैंने सुना था कि सार्वभौम चक्रवर्ती महाराज युधिष्ठिर ने महायज्ञ किया है। मन में

विचारा कि चलो मरती-जाती दुनिया है — एक बार लोट कर बाकी का आधा शरीर भी स्वर्ण बना लूं। इसी इरादे से आया था, परन्तु यहां तो ढाक के तीन ही पत्ते दीखे, नाम ही था। मेरा इतने दूर का प्रवास व्यर्थ हुआ। मेरा शरीर तो वैसा ही रहा।

यह सुन कर युधिष्ठिर सन्न हो गये। उन्होंने उत्सुकता से पूछा— भाई, वह कोनसा महान् राजा था जिसने भारी यज्ञ किया था। दया कर उसका आख्यान सुना कर हमारे कौतूहल को दूर करो।

नेवले ने शान्त वाणी से कहना शुरू किया— एक बार देश में भीषण दुर्भिक्ष पड़ा, बारह वर्ष तक वर्षा न हुई। पशु-पक्षी सब मर गये। वृक्ष वनस्पति सब जल कर राख हो गई। मनुष्यों के नर-कंकालों के ढेर लग गये। वृक्षों की पत्ती, जड़ और छाल तक लोग खा गये। मनुष्य मनुष्य को खाने लगा। ऐसे समय में एक छोटे से ग्राम में एक दरिद्र ब्राह्मण-परिवार रहता था। उसमें चार आदमी थे। एक ब्राह्मण, दूसरी उसकी स्त्री, तीसरा उसका पुत्र और चौथी पुत्रवधू। इस धर्मात्मा का यह नित्य का नियम था कि भोजन से पूर्व वह किसी भी अतिथि को पुकारता था कि कोई भूखा हो तो भोजन कर ले। यह नियम उसने इन दुर्दिनों में भी अखंड रक्खा। भूख के मारे चारों अधमरे हो गये थे। सप्ताह में एकाध बार कुछ मिलता, पर नियम से ब्राह्मण किसी अतिथि को पुकारता। इस काल में अतिथि की क्या कमी थी? कोई-न-कोई आकर उसका आहार खा जाता था। एक दिन पन्द्रह दिन के पीछे कुछ साधारण खाद्य द्रव्य मिला। जब चार भाग करके चारों खाने बैठे — तब फिर उसने किसी भूखे को

पुकारा और एक बूढ़े ने आकर कहा—मैं भूख से मर रहा हूँ; ईश्वर के लिए मुझे भोजन दो। गृहस्थ ने आदर से उसे बुलाया और अपना भाग उसके सामने धर दिया। खा चुकने पर जब उसने कहा—अभी मैं और भूखा हूँ। तब गृहणी ने, और उसके पीछे बारी-बारी से पुत्र और पुत्र-बधू ने भी अपने-अपने भाग दे दिये। इतने पर अतिथि ने तृप्त होकर आशीर्वाद दिया और हाथ धोकर वह अपने रास्ते लगा। वह धर्मात्मा ब्राह्मण-परिवार भूख से जर्जरित होकर मृत्यु के मुख में गया। उस अतिथि ने जो अपने झूठे हाथ धोये थे, उस पानी से जो उस महात्मा का घर गीला हो गया था उसमें मैं सौभाग्य से लोट लिया था। पर उस पुण्य जल में मेरा आधा ही शरीर भीगा—वह उतना ही स्वर्ण का हो गया। अब शेष आधे के स्वर्ण होने की कोई आशा नहीं है। आधा शरीर धर्म का लेकर ही मरना होगा।

क्षुद्र जन्तु की यह गर्वीली कथा सुनकर 'युधिष्ठिर की गर्दन झुक गई, और अपने तामसिक कर्म तथा गर्व पर लज्जा आई।

श्री रामचन्द्र जी, पिता की आज्ञा मान कर अपना राज्याधिकार त्याग जो बन को गये, उनके इस कार्य को मैं दृढ़तापूर्वक अधर्म घोषित करता हूँ। ज्येष्ठ पुत्र होने के कारण श्रीराम का राज्य पर पूर्ण-अधिकार था। श्रीराम आदर्श शासक भी होने योग्य थे। दशरथ जी की आज्ञा अनुचित थी। लोग कहते हैं कि उन्होंने केकई को वर दिया था, वे वचन-बद्ध थे। मैं कहता हूँ, उन्होंने श्रीराम को वचन दिया कि तुम्हारा राजतिलक होगा और वे केकई की अपेक्षा श्रीराम के प्रति अधिक वचन-बद्ध थे। फिर

श्रीराम का राज्यारोहण अत्यन्त सुखद, उत्तम, न्याय-नीति-युक्त और उचित था। यदि दो वचनों का बराबरी का ही संघर्ष था तो उन्हें राम के दिये वचन को ही पालन करना चाहिये था। मैं कह सकता हूँ कि यह झूठ बात है कि दशरथ ने केवल प्रण के कारण ही राम को बनोवास दिया। वास्तव में असल बात तो यह थी कि वह परले दर्जे के स्त्रैण और दुर्बल हृदय राजा थे—जैसे आज भी स्त्रियों के गुलाम बूढ़े रईस देख पड़ते हैं जो पुत्रों पर अत्याचार करते हैं। राम एक असाधारण धैर्यमय महापुरुष थे। इसलिये उन्होंने वन में भी चाहे जितने कष्ट भोगे—पर यश का ही सञ्चय किया। परन्तु यदि इतिहास को खोज कर देखा जाये तो दशरथ जैसे स्त्रियों के दास राजाओं की कमी नहीं। पूर्णमल को ऐसे ही पतित पिता ने स्त्री के वशीभूत होकर हाथ-पाँव कटवा कर कुएँ में डलवाया था। अशोक जैसे प्रियदर्शी से अपने पुत्र कुणाल की ऐसी ही स्त्री की दासता करके आंखें निकाल ली थीं। ऐसे स्त्रैण पुरुषों के बहुत उदाहरण हैं। दशरथ ने न तो अपने राज्य के अधिपति होने के उत्तरदायित्व पर विचार किया और न पिता के उत्तरदायित्व पर। उसने न केवल राम पर, प्रत्युत अपनी ज्येष्ठा पत्नी कौशिल्या पर भी घोर अन्याय किया। बिना अपराध एक ज्येष्ठ पत्नी के ज्येष्ठ पुत्र को, जिसका अधिकार था, अधिकार च्युत करके बन भेजना और कनिष्ठा और दुष्टा पत्नी के पुत्र को अनधिकार राज्याधिकार देना, दशरथ के दुर्बल हृदय का खुला उदाहरण है जिसकी अधिक-से-अधिक निन्दा की जानी चाहिए।

मैं कहता हूँ, राम को ऐसे पिता की ऐसी आज्ञा नहीं पालन करनी चाहिए थी। उन्हें दृढ़तापूर्वक इनकार कर देना उचित था। इस स्त्रैण वृद्ध के इस कुकर्म के फल-स्वरूप फूल-सी सीता को क्या-क्या लांच्छनाएँ और विपत्तियाँ नहीं सहनी पड़ीं? और राम को जीवन-भर किन-किन मुसीबतों से न टकराना पड़ा?

लोग चिउँटियों को, कीड़े-मकोड़ों को, आटे में गुड़ या चीनी मिलाकर जिमाया करते हैं, और इसे धर्म समझते हैं। उधर बड़े-बड़े वैज्ञानिक और डाक्टर लोग पृथ्वी-भर से रोग के कीटाणुओं को, मक्खियों को, मच्छरों को, खटमलों को, पिस्सुओं को जड़-मूल से नष्ट करने पर तुले हुए हैं। मैं पूछता हूँ इन दोनों श्रेणियों में धर्मात्मा कौन है? वे वैज्ञानिक और डाक्टर लोग या चिउँटियों को गुड़-शक्कर खिलाने वाले? बहुधा देखा जाता है कि म्यूनिसिपेलिटियाँ बन्दरों को, कुत्तों को और चूहों को पकड़ कर नष्ट किया चाहती हैं, परन्तु लोग प्रायः उसका विरोध किया करते हैं। बन्दर हिन्दुओं की दृष्टि में देवता हैं क्योंकि वे सभी अंगद और हनुमान के भतीजे ठहरे, उन्होंने गढ़-लङ्का फ़तह की थी। इसलिए वे मङ्गलवार के दिन बन्दरों को गुड़धानी खिलाना धर्म समझते हैं। इसी प्रकार गौ उनकी माता है। यदि उनके घर में कोई असाध्य बीमार हो जाय तो उसे आटे के पिण्ड खिलाते हैं। कुत्ता भैंरों जी की और चूहा गणेश जी की सवारी है, इन सब को जिमाना धर्म है; ख़ास कर काले कुत्ते को दूध पिलाना।

सर्प एक भयानक कीड़ा है, और उसका तुरन्त ही नाश कर देना उचित है। परन्तु हिन्दुओं के लिये वह एक देवता है, जिसकी

पूजा करना और दूध पिलाना धर्म का काम है। अब मैं जानना चाहता हूँ कि विज्ञान, स्वास्थ्य-कला, और सामाजिक जीवन के विरोध करने वाले ये नियम क्या बिल्कुल दया के दुरुपयोग के उदाहरण नहीं हैं?

मैं एक परिवार को जानता हूँ— इन्हें सनक सवार हुई है कि इनके घर में गढ़ा हुआ धन है—और उसकी रखवाली सर्प देवता कर रहे हैं। मैंने देखा है—घर पुराना है और उसमें सर्प रहता है। वह साँप बहुधा घर में घूमा करता है; पर ये महाशय उसे मारते नहीं—दूध पिलाते हैं, देखते ही हाथ जोड़ते हैं। इनके यहां एक किरायेदार बुढ़िया रहती थी। दैवयोग से एक दिन सर्प से उसका स्पर्श हो गया। दूसरे ही दिन उसके पुत्र की सगाई चढ़ गई और यह सर्प देवता का प्रसाद समझा गया।

यही नहीं, और भी बहुत से कीड़े-मकोड़े और जीव-जन्तु इसी भांति पूजे जाते हैं। अब इन धर्म के अंधों में और वैज्ञानिकों में एक-न-एक दिन गहरी ठनेगी ही।

मेरे कहने का यह अभिप्राय है कि किसी भी कार्य या विचार की अच्छाई और बुराई उसके सदुपयोग और दुरुपयोग में है। बुराइयों का सदुपयोग धर्म हो सकता है, और भलाइयों का दुरुपयोग अधर्म। परन्तु बुराइयों का दुरुपयोग तो सदैव ही पातक और अधर्म है। यह पातक किस भांति मनुष्य को गले तक ले डूबा है, इसका वर्णन हम अगले अध्यायों में करेंगे।

---

(३)

अन्धविश्वास और कुसंस्कार

अन्ध-विश्वास धर्म की जान है, उस धर्म की, जो पाखण्ड की भित्ति पर है, और जिसे आज लोग धर्म मानते हैं। इसी अन्ध-विश्वास के आधार पर लोगों ने अत्यन्त भयानक कार्य किये हैं। अन्ध-विश्वास का दास कभी सत्य के तत्व को तो खोज ही नहीं पाता। यह बात आम तौर पर प्रसिद्ध है कि धर्म के काम में अक्ल को दखल नहीं है। अन्ध-विश्वास के कारण धर्म नीति से फिसल कर रीति पर आ गिरा है; अब वह रूढ़ियों का दास है। जब मैं बड़े-बड़े सुयोग्य विद्वानों को अन्ध-विश्वास के आधार पर अवैज्ञानिक और युक्ति हीन बातें करते पाता हूँ तो चित्त को क्लेश होता है। कुसंस्कार अन्धविश्वास का पुत्र है। जो अन्ध-विश्वासी हैं—उनमें कुसंस्कार की भावना भी है ही। आज महामना मनीषिवर मालवीय जैसे प्रकाण्ड राजनीति और समाज तथा अर्थशास्त्र के दिग्गज मेधावी पुरुष पत्थर की मूर्तियों को परमेश्वर के समान पूजते हैं। यह अन्ध-विश्वास-जन्य पीढ़ियों के कुसंस्कार का फल है। मुहम्मदअली और डाक्टर अन्सारी जैसे दिग्गज वाग्मी और राजनीतिज्ञ; अजमलखाँ जैसे विचारशील पुरुष भी यह घोषणा न कर सके कि फरिश्तों की गप्पें मानने के योग्य नहीं। वे अन्ध

तक कुरान-शरीफ़ को ईश्वर-वाक्य और फरिश्तों द्वारा मुहम्मद साहेब पर उसकी 'वही' आना मानते रहे हैं। बहिश्त और दोज़ख़ में भी उनका पूरा विश्वाश है और उनकी आत्मा क़ब्र में प्रलय तक अपने कर्मों के फल की प्रतीक्षा में चुप-चाप पड़ी रहेगी—यह भी उन्हें विश्वास रहा। आज ईसाई-संसार ने पृथ्वी के उच्चकोटि के वैज्ञानिक पैदा किये, पर उनके वे अन्ध विश्वास वैसे ही बने हुए हैं। एक ईसाई लड़के ने एक बार पृथ्वी कैसी है—इसके उत्तर में कहा—स्कूल में गोल और गिरजे में चपटी।

धर्म का आधार वास्तव में मनुष्य की भलाई बुराई के विचार पर ही है, और वे विचार भिन्न-भिन्न देशों के निवासियों की स्थिति के अनुसार अनेक भांति के होंगे, इसलिये उन विचारों का आधार मूल प्रकृति पर नहीं, प्रत्युत शिक्षा के आधार पर होना चाहिये।

अब मैं यहाँ योरुप के धर्म विकास और ह्रास पर एक दृष्टि डालूँगा और फिर भारतीय धर्म विकास पर विचार करूँगा।

बहुत प्राचीन मौखिक कथाओं के आधार पर, जिन्हें प्राचीन धार्मिक-गण सत्य मानते थे—भूमध्य सागर के द्वीपों और उनके निकट के देशों को दैवी आश्चर्यों, अर्थात् जादूगरों, भूतों, राक्षसों, पङ्खदार राक्षसों, भयङ्कर रूपधारियों, पङ्खदार नरसिंहों और क्रूरकर्मा दैत्यों से भर दिया था। नीला आकाश स्वर्ग था, जहाँ जीऊस, देवताओं से घिरा—मनुष्यों की ही भांति सभा किया करता था।

जब यूनान में जागृति पैदा हुई, और उन्हें नवीन बस्तियाँ बसाने और भौगोलिक अन्वेषण के चाव उत्पन्न हुए, और उन्होंने कृष्ण सागर और भूमध्य सागर में खूब चक्कर काटे— तब उन्हें

पता लगा कि वे सारी अद्भुत आश्चर्य की कहानियां जो उनकी अति प्रतिष्ठित पुस्त 'आडिसी' में वर्णित हैं, वास्तव में कुछ हैं ही नहीं। वे यह भी समझ गए कि आकाश वास्तव में एक धोखा है और वहाँ कोई भी देवता नहीं रहता। इस प्रकार प्रसिद्ध होमर के सब यूनानी देवता और हीसियड के डोरिक देवता ग़ायब हो गए। प्रारम्भ में उन्होंने साहस पूर्वक जनता में इस अन्ध-विश्वास के विरुद्ध आवाज़ उठाई, उनका खूब कड़ा विरोध किया गया। उन्हें नास्तिक कहा गया और उनमें से अनेकों को प्राण-दण्ड और देश निकाला मिला, और उनकी सम्पत्ति लूट ली गई। इस अन्ध-धर्म-विश्वास के नाश में यूनानी तत्त्ववेत्ताओं ने बहुत सहायता दी और कवियों ने उनका खूब करारा अनुमोदन किया। एथेंस में देवी-देवताओं के अस्तित्व पर विचार करते-करते कुछ ऐसे मनुष्य भी हो गए जो संसार को भी मिथ्या और कल्पना मानते थे।

यूनानी लोग सदैव ही गृह-युद्ध में लगे रहे, परन्तु जब यूनान ने अन्ध-विश्वास से मुक्त होकर फ़ारस की आधीनता से इनकार कर दिया तो बड़ी खलबली फैल गई, क्योंकि उस समय फ़ारस का साम्राज्य वर्तमान समस्त यूरोप के विस्तार से आधा था और वह राज्य भूमध्यसागर, ईजियम सागर, कृष्ण सागर, केस्पियन सागर, इण्डियन सागर, फ़ारस सागर, और लाल सागर के किनारों तक फैला था। उस राज्य में दुनिया के ६ बड़े नद बहते थे - जिनमें से प्रत्येक की लम्बाई एक हजार मील से कम न थी। उसके राज्य की भूमि की सतह समुद्र की सतह से १३०० फ़ीट नीचे से लेकर २०,००० फुट तक ऊँची थी। इस कारण

वह महाराज्य धन-धान्य कृषि से भरपूर था उसका खनिज द्रव्य भी अतुल था। वहां के बादशाह को नीडियन राज्य, अमीरियन राज्य और कैलडियन राज्य के विशेषाधिकार विरासत में मिले थे, जिनके इतिहास दो हज़ार वर्ष पीछे तक का ठीक पता देते थे।

ऐसे ही समय सिकन्दर का जन्म हुआ। वह एक साधारण राज्य के अधिपति का पुत्र था। पहिले ही धावे में उसने थीब्स को जीतकर वहां के ६ हज़ार निवासियों को मरवा डाला और ३० हज़ार को गुलाम बनाकर बेच डाला। इससे उसकी धाक बँध गई। फिर वह एशिया की ओर बढ़ा। उसके साथ ३४ हज़ार पैदल, ४ हज़ार सवार और ७० तोपें थीं। उसने फ़ारस की असंख्य सेना पर आक्रमण किया और एशिया माइनर दख़ल कर लिया। वहां का अटूट ख़ज़ाना भी उसके हाथ लगा। फ़ारस का शाह दारा ६ लाख फ़ौज लेकर सामने आया पर वह हारा और उसके १ लाख सिपाही खेत रहे। इस प्रकार वह एशिया को फ़तह कर भूमध्य सागर की ओर बढ़ा। रास्ते के सब राज्य उसने विजय कर लिये, और समुद्र के सम्पूर्ण तट स्वाधीन कर लिये मिश्र भी उसने जीत लिया। सिकन्दर भी अन्ध-विश्वास का दास था। यहाँ से वह जूपिटर-एमन के दर्शनों को गया, जो वहां से दो सौ मील दूर लीबिया के बालुये मैदान में था। वहां के देवता ने उसे देवता का पुत्र बताया जिसने सर्प के वेष में उसकी माता को धोखा दिया था। निर्दोष गर्भ-धारण और देवी-देवताओं की प्रथा उन दिनों ऐसी प्रबल थी कि जो असाधारण काम करता था, अवतार समझा जाता था। यहां तक कि रोम में, कई शताब्दियों तक कोई

यह कहने का साहस नहीं कर सकता था कि उस नगर के स्थापक 'रोम्युलस' की उत्पत्ति मंगल और रासिलविया के अचानक संयोग से नहीं हुई है। प्लेटो जैसे तत्वदर्शी के चेले उन सब लोगों से नाराज़ होते थे, जो प्लेटो को अपोलो देवता के निर्दोष गर्भ से उसकी माता की कुमारी अवस्था में उत्पन्न होना नहीं स्वीकार करते थे। जब सिकन्दर अपने आज्ञा-पत्रों और घोषणाओं में अपने को 'सिकन्दर वल्द जूपीटर एमन' लिखकर प्रकाशित करता तो एशिया के निवासियों पर उसका ऐसा प्रभाव पड़ता कि वे उसके विरुद्ध कुछ भी नहीं कर सकते थे। उसकी माता हँसी में बहुधा कहा करती थी कि सिकन्दर मुझे जूपीटर की जोरू न बनाया करे तो अच्छा है।

परन्तु सिकन्दर ने अपनी अल्पावस्था में ही जो कार्य किए वे कम आश्चर्यजनक न थे। हेलेस्पोर्ट को पार करना, ग्रेनीकस ज़बर्दस्ती ले लेना, विजित एशिया माइनर का राजनतिक प्रबन्ध करते हुए शीतकाल व्यतीत करना, दक्षिण और केन्द्रस्थ भाग को सेना का भूमध्य सागर के किनारे-किनारे सफ़र करना, टायर के घेरे में बहुत सी शिल्प-सम्बन्धी कठिनाइयों का निवारण करना, गाजानगर को तोपों से उड़ा देना, फारस का यूनान से पृथक् हो जाना, भूमध्य सागर से फारस की जल-सेना को बिलकुल निकाल देना, फारस के उन उद्योगों को रोक दिया जाना, जिनमें वह एथेन्स-निवासियों और स्पार्टा के निवासियों से मिलकर षड्यन्त्र रचता था—या रिश्वत देता था, मिश्र को आधीन कर लेना, कृष्ण सागर और लाल सागर की सम्पूर्ण सेनाओं का मेसोपोटेमिया के रेतीले मैदानों की ओर एकाभिमुख होना थलेक्स के टूटे पुल पर से

लम्बे बेतों से पूर्ण किनारे वाली फ्रान नदी को ससैन्य पार कर लेना, हिगरिस नदी को पार करना, अरबेला के बड़े और महत्व-पूर्ण युद्ध और पहली रात में युद्ध क्षेत्र का निरीक्षण करना, फिर ठीक युद्ध के समय तिरछी चाल चलना, और शत्रु के मध्यभाग को छेद जाना, दारा को विजय करना—ये सब ऐसे अलौकिक काम थे कि उस समय तक किसी सैनिक ने नहीं किये थे।

इन उदाहरणों से आप देखेंगे कि यूनान का अन्ध-विश्वासों के दूर होने पर बहुत-सी चुस्ती प्राप्त हुई। इस बड़े विजेता के साथ यूनानियों ने डेन्यूब से गङ्गा तक का सफर किया, कृष्ण-सागर के उस पार वाले देशों के उत्तरी वायु के झोंक खाये। मिश्र की 'बाद समूम' के थपेड़े सहे, मिश्र के वे मीनार, देखे, जो दो-हजार वर्षों से खड़े थे। लक्सर के गूढ़ाक्षर बलित स्तम्भ और भेदपूर्ण स्त्रीमुख और सिंह शरीर दानवों की कुञ्ज देखी और उन महाराजों की विशाल मूर्तियाँ भी देखीं जिन्होंने संसार के आदि भाग में राज्य किया था। बेबीलोन का वह नगरकोट भी तब शेष था जिसका घेरा ६० मील से अधिक था और तीन शताब्दियों से विदेशियों के उपद्रव सहकर भी अभी तक ८० फीट से अधिक ऊँचा था। उन्होंने वह आकाशचुम्बी 'बेल' के मन्दिर का भग्न अंश भी देखा—जिसकी चोटी पर वेध शाला थी, जहाँ से इन्द्रजाली कैलडियन ज्योतिषी रात को नक्षत्रों से बात-चीत किया करता था। उन्होंने आकाश में लटकते हुए बाग़ भी देखे थे और उस पानी की कल का भी टूटा भाग देखा था जो नदी से उन वृक्षों तक पानी पहुँचाता था। उन्होंने उस असाधारण कृत्रिम झील को भी देखा

जिसमें आरमिनिया के पहाड़ों का बर्फ पिघल-पिघल कर आता था, और फ्रात नदी के बँधान से रुक कर सारे शहर में बहता था।

इन सब दिग्दर्शनों ने उन मेधावी पुरुषों के मस्तिष्क में वह शक्ति उत्पन्न की, जिसके कारण इन्होंने आगे चलकर अलग्जेण्ड्रिया में गणित और व्यावहारिक विद्या की पाठशालाएँ खोलीं और यूनान ज्ञान का केन्द्र हो गया।

सिन्ध नदी को पार करके सिकन्दर का भारत में घुस आना धार्मिक दृष्टि से दोनों प्राचीन जातियों के विचार-विनिमय का एक जबर्दस्त कारण हो गया। भारत ने भयानक कष्ट देनेवाले देवताओं को उन लोगों से पहचाना और तन्त्र ग्रन्थों की सृष्टि की। आगे चलकर तान्त्रिकों के उपद्रव देश भर में फैल गये। प्राचीन भारतीय देवताओं और आत्मवाद की छाया यूनान में अरस्तू ले गया, जिससे यूनान में तत्वदर्शन की बड़ी भारी उन्नति हुई और रोमन सभ्यता में भी उसका बड़ा भारी स्थान रहा।

परन्तु भारतवर्ष में तान्त्रिक लोगों ने अन्ध-विश्वास की जड़ें पाताल तक फैला दीं। कापालिक लोग उस समय दर-बदर फिरा करते थे, और मरघट में वे कुत्सित-जीवन व्यतीत करते तथा उन्हें लोग अलौकिक-शक्ति-सम्पन्न आदमी समझते थे। पृथ्वीराज-रासो में ऐसे तान्त्रिकों का और उनके दर-बदर फिरने का बहुत जिक्र है।

परन्तु अन्ध-विश्वासों को सबसे बड़ा सहारा योग के चमत्कार से मिला। आज भी लाखों मनुष्य योग की विभूतियों पर भारी श्रद्धा करते हैं। मैं दृढ़ता पूर्वक कहता हूँ कि योग की विभूतियाँ और सिद्धियाँ बिलकुल असाध्य और अव्यवहार्य हैं, और मैं

विश्वाश नहीं करता कि कभी भी पृथ्वी पर कोई ऐसा मनुष्य हुआ होगा कि जो उन विभूतियों से जानकार होगा। मनुष्य का मच्छर हो जाना, या पर्वताकार हो जाना, लोप हो जाना, आकाश में उड़ना, दूसरी योनियों में चला जाना, मर कर भी जी उठना—बिल्कुल गप्प झूठ, असम्भव और ढकोसला है।

यहाँ योगशास्त्र पर मैं और भी गम्भीर दृष्टि डालूँगा। प्रथम तो यह विचारना चाहिए कि योग-शास्त्र का निर्माता पतञ्जलि ऋषि कोई अति-प्रसिद्ध बड़ा भारी ऋषि नहीं। उसका जन्म पाणिनी के पीछे का है, क्योंकि उसने पाणिनी की अष्टाध्यायी पर महाभाष्य रचा है! पाणिनी का जन्म-काल मसीह से ३०० वर्ष पूर्व के लग-भग है। यह वह समय था जब देश के धर्म में अन्धकारकी भावना फैल गई थी, और ब्राह्मणों का देश में जोर था। बड़े-बड़े यज्ञ होते थे। अनुष्ठानों और क्रियाओं का बड़ा महत्व था। यूनानी लोगों का भारत में नया संस्पर्श हुआ था, और उनसे भारतीयों ने अद्भुत, और विचित्र देवताओं, घटनाओं और आश्चर्य की बातें सुनी थीं। पतञ्जलि ने इन सब को हृदयङ्गम किया और योग-दर्शन लिखा। पतञ्जलि स्वयं योग का ज्ञाता था और उसे वे सारी सिद्धियाँ आती थीं—इसका कुछ भी प्रमाण देखने को नहीं मिलता। न इस बात का ही कोई प्रमाण हमें देखने को मिलता है कि पतञ्जलि से पूर्व किसी भी ऋषि ने इस प्रकार की सिद्धियों की चर्चा की हो, या उन्हें सम्भव माना हो। वास्तव में वह एक रहस्य पूर्ण ढङ्ग से लिखी हुई एक और ही उद्देश्य की पूर्ति की पुस्तक है। उसका उद्देश्य केवल सांख्य के बुद्धिगम्य

विषयों को अनुभविक ढङ्ग से व्यक्त करना ही था, जो वास्तव में चमत्कारिक तो था, पर व्यवहारिक नहीं था।

इस योग-दर्शन के निर्माण के बाद पैशाची भाषा के कुछ ग्रन्थों में, जिनका मूल उद्गम भी मध्य एशिया की जातियों के संसर्ग से था—बड़ा प्रभाव पड़ा। पुराणों में जो असंख्य बुद्धि-विपरीत बातें देखने को मिलती हैं—वे सब इसी की बदौलत गढ़ी गई हैं, और योग, तन्त्र-मन्त्र, जादू-टोने की बदौलत आज भी लाखों लोग पेट भर रहे हैं। दो-चार उदाहरण नीचे दिये जाते हैं।

एक बार मैं रुग्ण हो गया था। रक्त की बहुत कमी हो गई थी और अनिन्द्र रोग भी था। उन्हीं दिनों एक योगीराज दिल्ली आए हुए थे। उनकी बड़ी धूम थी। वे सूर्य पर बदली ला देते हैं, अदृश्य हो जाते हैं, और देखते देखते बालरूप धारण कर लेते हैं तथा और भी अद्भुत क्रियाएँ जानते हैं, यह बात अखबारों तक में छप गई थीं। मेरे एक मित्र उन्हें मेरे पास पकड़ लाए—उनका कहना था कि योगीराज दृष्टिमात्र से ही मुझे आरोग्य कर देंगे। नगर के दो प्रतिष्ठित बैरिष्टर और एक डाक्टर साहेब सदैव ही योगिराज के साथ घूमते थे। योगिराज को देखते ही मैं तुरन्त पहचान गया। वह महाविद्यालय ज्वालापुर का एक चलता-पुर्जा विद्यार्थी था; परन्तु मैंने ऐसा भाव दिखाया मानों मैंने उन्हें बिलकुल नहीं पहचाना। वे बड़ी गम्भीरता से बैठ गए। मूछें मुण्डी हुई, घुँघराले बाल लहराते हुए, माँग निकली हुई, बढ़िया तंजेब का कुरता और पीतल की पच्चीकारी के काम की खड़ाऊँ पहिने, रेशमी धोती लपेटे हुए, पान कचरते हुए वे कुर्सी पर डटे हुए थे।

मैंने कहा—"महाराज, कहाँ से पधारना हुआ ?"

"हम मान-सरोवर में ध्यानस्थ थे।"

"कितने वर्षों से ?"

"बहुत काल से, लगभग २५ वर्ष हुए होंगे, अधिक भी हो सकता है।"

"आपकी आयु क्या है ?"

"आप क्या अनुमान करते हैं ?"

"यही २०, ५ वर्ष।"

योगीराज जोर से हँसकर बोले—"हम १०० के पेटे में हैं। परन्तु अभी तो हमारी किशोरावस्था ही है। पूर्ण युवा नहीं हुए हैं ?"

मैंने मन की हँसी दबाकर कहा—"आप बालों में तेल कौन-सा डालते हैं ?"

"हमने पचासों वर्षों से तेल नहीं डाला। बाल स्वयं शरीर से चिकनाई खींच लेते हैं।"

इसके बाद उन्होंने अँग्रेज़ी मिश्रित हिन्दी में बीच-बीच में एकाध टुकड़ा श्लोक बोलते हुए योग की व्याख्या और चमत्कार कैसे प्राप्त किए जाते हैं—इसका विवेचन करना शुरू किया। अन्त में दृष्टिमात्र से मेरा रोग अच्छा कर देने का वचन भी दिया, परन्तु दृष्टि में बल लाने को साधना करनी होगी। क्योंकि कई सिद्धियाँ दिखाने के कारण उनका बल ख़र्च हो गया था।

बहुत-सी बातें सुनकर अन्त में मैंने हँस कर कहा—"ख़ैर, यह तो हुआ। अब आप यह तो कहिये, आपकी माताजी प्रसन्न हैं ? और बहनों का विवाह हुआ या नहीं ?"

योगीराज एक दम आकाश से गिरे। बोले— "क्या आपका हमारा कुछ और भी परिचय है ?"

मैंने कहा— "यार, क्यों पाखण्ड करते हो ? अभी पं० भीमसेन जी के डण्डों के निशान पीठ पर होंगे।" सुनते ही हंस पड़े, लिपट गये। सब रोना रोया। माता जी मर गईं। एक बहन विवाह दी। दूसरी के विवाह की चिन्ता है। रुपये की फिकर है। आदि आदि।

अन्ध-विश्वास के द्वारा बच्चों में भूत-प्रेत के कुसंस्कार भी जमा दिये जाते हैं, और वे सदैव डरपोक बने रहते हैं। एक वीर, जो तोपों की गर्जना और बरसती गोलियों में निर्भय खड़े रहते थे और सेना के उच्च-पदस्थ थे, रात को पेशाब करने जब उठते तो किसी सेवक को जगा कर साथ ले लेते थे।

एक पागल हमें देखने को मिला जो मौनी बाबा के नाम से प्रसिद्ध था। यह व्यक्ति एक बार किसी मंत्र को जगाने मरघट में गया था। वहाँ धरती में एक कील ठोंकी। दैवयोग से वह कील उसके अंगरखे के पल्ले के साथ गड़ गई। जब उठ कर चलने लगा, पल्ला कील में अटक ही रहा था। बस चिल्ला उठे। समझे, भूत ने पकड़ लिया। बेतहाशा भागे। तब से मस्तिष्क में ऐसा विकार आया कि चुप हो गये। २५ वर्ष तक उसी दशा में रह कर मर गये। हमने उन्हें देखा था। यह दशा थी—जहां खड़ा करदो जड़वत् खड़े रहते थे, और जिधर उनका कोई अङ्ग करदो वैसा ही बना रहता। बहुधा लोग उनके मुंह में लड्डू दे देते। वह घण्टों वैसा ही धरा रहता था। लोग उन्हें सिद्ध समझ कर पूजा करते थे।

अन्ध-विश्वास और कुसंस्कारों ने ही करोड़ों हिन्दुओं को मूर्ति पूजा के कुकर्म में फांस रक्खा है। पढ़-लिख कर भी, समझदार होकर भी वे उससे विमुख नहीं हो सकते। बहुत लोग स्वप्नों पर बड़ा विचार किया करते हैं। अमुक स्वप्न देखने से अमुक फल होगा। एक बार राजा जमोरिन ने एक स्वप्न देखा कि चन्द्रमा के दो टुकड़े हो गये हैं। राजा ने उसका अर्थ दर्बारियों से पूछा, परन्तु वे ठीक-ठीक उत्तर न दे सके। उन्हीं दिनों कोई अरब के व्यापारी वहां आये थे। राजा ने उनसे भी स्वप्न का हाल कहा—उसने अंट-संट बता दिया। राजा मुसलमान होगया और उसके वंशधर आज भी मोपला मुसलमान हैं।

स्वप्नों की चर्चा महाभारत, भागवत, पुराण आदि में बहुत है। कुछ ऐसी कथायें भी हैं कि स्वप्न में देखी स्त्रियों से और स्थानों से जागृत होकर भी कुछ राज्य मिल सके हैं। वीर विक्रमादित्य की कहानियों में इस प्रकार की बातों का खूब उल्लेख है। फलतः पढ़ने वालों पर उसका बुरा प्रभाव पड़ता है।

शकुन भी अन्ध-विश्वास की खास चीज़ है। मुगल बादशाहों तक को शकुन देखने का ख़ब्त सवार था। वे बिना शकुन-मुहूर्त दिखाये कोई काम करते ही न थे।

बिल्ली का रास्ता काट जाना, कौवे का बोलना, काने आदमी का सामने मिलना. गीदड़ का रोना, खाली घड़े लेकर किसी स्त्री का सामने आना, किसी का छींकना ये सब अशुभ बातें मानी जाती हैं। कुछ लोग तो इतने अन्ध-विश्वासी होते हैं कि वे इस कदर भयभीत हो जाते हैं कि बहुधा उनके प्राण निकल जाते हैं।

इसी प्रकार की एक मजेदार घटना है कि किसी देहाती लाला को किसी देहाती ज्योतिषी ने कह दिया कि जिस दिन तुम्हारे मुंह से खून निकलेगा तुम मर जाओगे। एक दिन लाल रङ्ग का डोरा उनके मुंह में कहीं से लिपट गया। उसे देखते ही वह भयभीत होकर समझ बैठा कि मृत्यु आगई। वह दुकान बन्द करके घर आया। घर दूर था, और गर्मी का मौसम था, पसीने से तर हो गया। स्त्री से कहा—जल्द खाट बिछादे और लड़के को स्कूल से बुलाले—मेरा आखीर वक्त आगया है। स्त्री ने शरीर देखा ठंडा बर्फ हो रहा था—उसने रोकर कहा— अरे तुम तो बिल्कुल ठंडे हो रहे हो। अब उसे और भी मृत्यु पर विश्वास हो गया। वह जल्दी-जल्दी साँस लेने और लेन-देन का हिसाब बताने लगा।

लड़का समझदार था—स्कूल से आया और देख कर बोला पिता जी, आप में मरने के कोई लक्षण नहीं। आप कैसे मरते हैं। उसने कहा—हमारे मुंह से आज खून निकला या नहीं? लड़के ने देख कर कहा—कहां? यह तो लाल धागा दांतों से लिपट रहा है।

यह सुनते ही लाला खुशी से उछल पड़े। बेटे को छाती से लगा लिया और कहा—बस इसीने इस वक्त जान बचाई है। इस के बाद खाना खाकर फिर दुकान पर जा डटे।

इस अन्ध-विश्वास के चक्कर में फंस कर हमने बहुत कष्ट झेले हैं। परन्तु कहीं भी कुछ परिणाम देखने को नहीं मिला। एक बार एक व्यक्ति के कहने से २१ दिन अन्न-जल त्याग अखंड-जप दुर्गा का किया। उस व्यक्ति ने कहा था, साक्षात् दुर्गा दर्शन देगी। पर दुर्गा की दासी ने भी दर्शन नहीं दिये। एक बार कंठ तक जल

में कठोर शीत ऋतु में लगातार ४-५ घंटे प्रति-दिन तीन मास तक खड़े रह कर मृत्युञ्जय और गायत्री का जप किया, परन्तु हमें उससे कुछ भी सिद्धि न प्राप्त हुई। और भी बहुत से कष्ट-साध्य और अद्भुत अनुष्ठान हमने किये और हम दावे से कह सकते हैं, ये सभी झूठे और पाखंडपूर्ण निकले।

हाल ही में मेरे एक मित्र हैदराबाद दक्षिण से आये। दो दिन बाद ही उनके घर से जल्द आने का तार आ गया। वे अपने नवजात शिशु को रोगी छोड़ आये थे। उसी की चिन्ता ने धर घेरा। बार-बार उसी बच्चे की अशुभ कल्पना उनके मन में उठने लगी। तार देकर पूछा कि क्या हाल है, पर जवाब का सब्र न था। एक नामी ज्योतिषी के पास गए, ग्रह दशा दिखाई और उन्होंने रङ्ग ढङ्ग देख पितलाया सा मुंह बनाकर कहा— बच्चे पर घोर संकट है, छाती में कफ का रोग है, १३ तारीख तक बुरी दशा है। बचना कठिन है। उस समाचार को संशोधन करके उन्होंने मुझे सुनाया कि उसे डबल निमोनिया हो गया है। विवश उन्हें विदा किया। वहां पहुँच कर उन्होंने लिखा—बच्चे को देखने की आशा न थी, भूखा प्यासा स्टेशन पर उतरा, पागल की भांति तांगे में बैठकर घर पहुँचा, देखता क्या हूँ छोटे साहब माता की छाती से लगे दूध पी रहे हैं। देखते ही दोनों हाथ उठा कर हंस पड़े। अब दिल को तसल्ली हुई। चले आने का अफसोस है।

कहिये! इस अंधविश्वास और कुसंस्कार का भी कुछ ठिकाना है। सारी पृथ्वी की जातियों में एक से एक बढ़कर कुसंस्कार फैले हुए हैं, और विज्ञान अभी तक उन्हें दूर करने में असमर्थ है।

*

(४)

अत्याचार

अन्ध विश्वास के साथ क्रोध का खूब दोस्ताना है। क्योंकि जो आदमी अन्ध-विश्वासी हैं उनके पास युक्तियाँ नहीं। वे अपनी दुर्बलता को क्रोध में छिपाते हैं। उमर जो मुसलमानों का तीसरा खलीफ़ा था एक आदर्श अन्ध-विश्वासी मुसलमान था। जो कोई भी उससे उसके धर्म में तर्क करता—उसका जवाब वह तलवार से देता था। वह एक भारी डील-डौल का आदमी था। उसका शरीर काला, आँखें लाल, और सिर बिल्कुल सफाचट था। वह सदा एक चमड़े का कोड़ा अपने पास रखता था। और उससे बदमाशों और मुसलमानी धर्म की निन्दा करने वाले कवियों की मरम्मत किया करता था। एक बार वह जब युद्ध करने ईसाइयों के किसी नगर पर गया था तो ईसाइयों ने उससे कुछ धर्म सम्बन्धी प्रश्न पूछे। इस पर उसने तलवार निकाल कर कहा—मेरा उत्तर सिर्फ यह तलवार है।

धार्मिक अत्याचारों को मेरे विचार में ईसाइयों ने सब से अधिक धैर्य और साहस के साथ सहन किया है। ईसाइयों पर अत्याचार के पहाड़ टूट पड़े थे। सर्व-प्रथम तो ईसा की मृत्यु के बाद यहूदियों ने और नीरो बादशाह ने उन्हें बड़े-बड़े कष्ट दिये।

इसके बाद जब प्रोटेस्टेन्ट सम्प्रदाय चला तब पोपों ने उन्हें भयानक कष्ट दिये। यहाँ पाठकों की जानकारी के लिये हम उन अत्याचारों का संक्षेप में वर्णन करते हैं।

ईसाइयों के चरणों में आज आधी दुनिया है। इनके समय में बड़े विद्वतापूर्ण तात्विक लेखक नहीं थे। मसीह के पास न तलवार थी, न विद्या थी, केवल एक आत्मबल था। उनका उपदेश प्रेम का था। वे कहते थे कि एक परमेश्वर ही सर्वोपरि है। उस ज़माने में मूर्ति-पूजा का प्राबल्य था। पर मसीह ने शान्तिपूर्वक प्रचार किया कि यह पत्थर की प्रतिमाएँ कदापि ईश्वर नहीं हैं। राजा और प्रजा के विरुद्ध यह आवाज़ थी। हज़ारों वर्ष के अन्ध विश्वास के विरुद्ध यह घोषणा थी। इसके बदले में मसीह को अनेक कष्ट दिये गये, उसे पापी और विधर्मी कह कर तिरस्कृत किया गया, पर वह शान्ति धर्म और सत्य की मूर्ति था। उसने अलौकिक धैर्य के साथ अत्याचार का मुक़ाबिला किया। उसे तख्तों पर लटका कर उसके हाथ-पाँवों में लोहे के कीले ठोक दिये गये और वह भगवान् से उन अत्याचारों के लिये क्षमा माँगता हुआ शान्ति-पूर्वक मृत्यु को प्राप्त हुआ। उसने केवल ढाई वर्ष उपदेश किया।

मसीह के बाद पावाल ने ईसाई मत का प्रचार किया। इसे भी आश्चर्यजनक संकट सहने पड़े। पाँच बार यहूदियों की रीति से और तीन बार रोमनों की रीति से उसने कोड़े खाये। एक रात-दिन वह समुद्र में रहा और अन्त में मसीह धर्म पर विश्वास के अपराध पर मारा गया। इस धीरजवान् पुरुष ने मसीह धर्म का प्रचार बड़ी निर्भीकता और अदम्य उत्साह से किया, और बड़े

धैर्य और सहिष्णुता से सब कष्टों का सामना किया। उसने एशिया, यूनान, फिलिप्पी· थिसलिनी, चिरिथ, इफीस और मिलित नगरों में प्रचार किया और बहुत से शिष्य बनाये। अन्त में जेरुसलेम में फिर पकड़ा गया और दो वर्ष कैसरिया नगर में क़ैद रख कर रोम को भेज दिया गया।

उन दिनों रोम नगर संसार के बड़े-चढ़े नगरों मे एक था। संसार-भर के भाषा-भाषी व्यापारी रोम के बाज़ारों में चलते थे। मानों वह एक स्वयं छोटा-सा जगत था। इसका विस्तार बहुत अधिक था और यह सात पहाड़ों पर बसा था। इसमें ३० लाख आदमी रहते थे। एक हज़ार सात-सौ अस्सी सरकारी इमारतें थीं। देवताओं के चार-सौ से अधिक मन्दिर थे, जिनमें केपिटोल नामक यूपिटर देवता का मन्दिर जो कपिटोली नामक पहाड़ी पर बना था, बड़ा विशाल था और इसके ऐश्वर्य की बड़ी प्रसिद्धि थी। उसकी लागत एक करोड़ रुपये कूती जाती थी। रोम के बादशाह ने इस महानगरी में भयङ्कर आग लगा दी और दोष मसीही प्रचारकों पर लगा दिया। निदान प्रजा ने उनका बड़ी निर्दयता से वध करना शुरू किया। इसी धर्म-युद्ध में पावल के प्राण गये।

याक़ूब मसीहा का भाई था और जेरूसेलम में मसीही धर्म का प्रचारक था। रोम के उपद्रव के समय ही उस पर कोप पड़ा। वह जब न्यायालय में पेश किया गया तो उसने वीरतापूर्वक कहा— "यीसू क्रीष्ट परमेश्वर के दाहिने हाथ बैठा है और आकाश के मेघों पर चढ़कर फिर आवेगा।" इस बात पर उसे पत्थरों से हलाल करने का दण्ड दिया गया। पत्थरों की झड़ी जब उस पर पड़ने

लगी तब उसने तनिक अवसर पाकर पुकार कर कहा—'हे पिता! इन्हें क्षमा कर, क्योंकि ये नहीं जानते कि ये क्या कहते हैं।' तभी एक सोटे की भारी चोट खाकर वह गिर गया।

शिमियोन जेरूसेलम का धर्माध्यक्ष था। जब यह पकड़ा गया तब १२० बरस का था। उसने कितने ही दिन कोड़े खाये पर वह न मरा। अन्त में तंग हो हत्यारों ने उसे क्रास पर चढ़ा दिया।

इग्नाट्रिथ ट्राजन अन्तैखिया नगर का मण्डलाध्यक्ष था। शिमियोन के ३ वर्ष बाद ईसाई होने के अपराध में प्राणघात करने को रोम नगर में पहुँचाया गया। उसने रोम के अधिकारियों को चिट्ठी लिखकर कहलाया—'सूरिया से रोम तक मैं जंगली पशुओं से लड़ता चला आताहूँ। मैं दस योद्धाओं के साथ जञ्जीर से कसा हुआ चलता हूँ। और मैं जैसे नित्य उनकी भलाई करता हूँ वैसे मेरे विरुद्ध उनका कोप बढ़ता है। वे चाहें तो मुझे सिंहों के आगे फेकें, चाहे क्रास पर चढ़ावें, चाहे मेरे अंग को काटें, यदि मैं प्रभु के नाम पर आनन्दित हूँ तो उन पीड़ाओं से क्या होगा?'

रोम में पहुँचाने पर वह लोगों के सामने ही अजायबघर के जङ्गली पशुओं के सामने डाला गया। जब उसने सिंहों को गर्जते हुए सुना तो कहा कि 'मैं प्रभु मसीह का फटका हुआ गेहूँ हूँ, जब तक जंगली पशुओं के दाँत से न पीसा जाऊँ तब तक रोटी न बनूँगा।' सिंह ने झटपट उसे फाड़ डाला। उसके बाद उसकी थोड़ी-सी हड्डियाँ जो बचीं वे अन्तैखिया में गाड़ दी गईं।

प्लूकार्प स्मर्ना नगर का सन् १६७ में मंडलाध्यक्ष था और योहन प्रेरित का शिष्य था। इसे ईसाई होने के अपराध में जीते

जलाए जाने की आज्ञा हुई। तब इसकी उम्र ८० वर्ष की थी। लोगों ने दया करके उसे समझाया कि अपना विश्वास त्याग दो। उसने कहा—'मैंने चार कोड़ी छै वर्ष, प्रभु मसीह की सेवा की है, और उसने कभी मेरा अपराध नहीं किया, तो जिसने मोल देकर मुझे निसतार दिया है, मैं क्योंकर उसका विश्वासघाती बनूँ ?' जब वह ईंधन के निकट खड़ा हो प्रार्थना कर चुका, तब आग सुलगाई गई। बड़ी-बड़ी लपटें उठीं पर आश्चर्य कि वह जला नहीं। पीछे तीर से बेधकर मारा और उसकी लाश आग में फैंक दी गई।

ब्लाडीना दासी सुकुमार और दुर्बल थी। ईसाइयों को भय था कि वह कष्ट पाकर अवश्य विचलित हो जायगी। पर जब उस पर प्रातःकाल से लेकर संध्या तक मार पड़ी, यहाँ तक कि उसकी चमड़ी के धुर्रे उड़ गये, शरीर एँठकर कमान हो गया और जगह-जगह से ऐसा क्षत विक्षत हो गया कि हत्यारों को उसके जीते रहने पर आश्चर्य होता था। पर वह अन्तिम साँस तक कहती गई कि 'मैं ईसाई हूँ।' अन्त में उसे हाथ फैलाकर एक खंबे से बाँध दिया और पशु छोड़ दिये कि फाड़ डालें, पर पशु उसे सूँघकर चले गये। कदाचित् उन्हें दया आ गई हो। तब उसे अगले दिन के लिए रख छोड़ा गया। दूसरे दिन जब वह फिर बुलाई गई तो आनन्द से क़दम बढ़ाकर वध स्थल पर गई। आख़िर एक जाल में लपेटकर उसे साँड के आगे डाला गया और इस तरह उसका अन्त हुआ।

परपिटू एक २२ वर्ष की विवाहिता स्त्री थी। उसकी गोद में एक छोटा बच्चा था। जब उसे ईसाई होने के अपराध में वध की आज्ञा दी गई तो प्रथम उसका बालक छीनकर क्रूरता से मार

डाला गया। फिर वधिक उसे वध-स्थान पर ले चले। उसने निर्भय होकर मृत्यु का सामना किया। उसके वृद्ध पिता ने स्नेहवश उसे विचलित करना चाहा, परन्तु उसने बड़ी वीरतापूर्वक कहा—'पिता, शान्त हो, क्या यह धर्म-युद्ध से पीछे हटने का समय है। आत्मा में बल आने दो—ईश्वर के लिए इसमें विघ्न मत करो।' इतना कह वह वधस्थान पर आ खड़ी हुई और पशुओं से फाड़ डाली गई।

सन् २६० में रोम की ईसाइयों की मंडली का लिकस्त नाम का अध्यक्ष मारा गया। जब नगर के अधिकारी ने सुना कि मंडली के पास बड़ी भारी धन सम्पत्ति है तो लौरिन्तिय नामक प्रधान सेवक को बुलवाकर उसने आज्ञा दी कि सब धन हाज़िर करे। उसने कहा—सब धन सम्पति को सँभालने और उसका बीजक बनाने के लिये मुझे तीन दिन का अवकाश दीजिये।

अवकाश मिलने के तीसरे दिन वह समस्त रोम के कंगालों को इकट्ठा कर प्रधान के महल में आ हाज़िर हुआ, और प्रधान से कहा—'हमारे प्रभु की सम्पत्ति को सँभालियेगा। आपका सारा आँगन सुनहरे पात्रों से भरा पड़ा है।' प्रधान ने बाहर आकर जब कङ्गालों का झुंड देखा तो आपे से बाहर हो गया, और उसने ज्वालामय नेत्रों से उसकी ओर देखा। लौरिन्तिय ने कहा—आप क्रोधित क्यों होते हैं? आप जिस सोने को चाहते हैं वह धरती की एक साधारण धातु है जो मनुष्यों को समस्त पापों में फँसाती है। ईश्वर का वास्तविक धन तो यही है। देखिये, कितने मणि-रत्न, स्वर्ण-मुद्रा जगमगा रहे हैं। कुमारिकायें और विधवायें बड़े-बड़े रत्न हैं। प्रधान ने डपट कर कहा—'मुझसे ठट्ठा करता है, ठहर!

तूने शायद मरने पर कमर कस ली है। उतार कपड़े।' उसे नंगा करके लोहे की बड़ी झझरी पर लिटाकर धीमी आँच से भूनना शुरू किया। वह धैर्यपूर्वक एक करवट भुनता रहा—तब उसने प्रधान को पुकार कर कहा—'यह पंजर तो पक चुका, अब दूसरी करवट भुनवाइये।' दूसरी करवट लेने पर जब उसका जीवन थकित हुआ तो उसने रोम के निवासियों के लिये सुख और शान्ति की याचना की और सदा के लिये मृत्यु की गोद में सो गया।

इसी वर्ष कैसरिया नगर में कूरिल नामक एक छोटा-सा बालक रहता था। यह ईसा का नाम नित्य लेता था। इसके लिए उसके साथी लड़कों ने उसे मारा, बाप ने घर से निकाल दिया, अन्त में वह रोम के न्यायाधीश के पास पहुँचाया गया। न्यायाधीश ने उसे समझा कर कहा—"बच्चे, तू बड़ा सुकुमार है, तू यह कैसा पाप करता है कि मसीह का नाम लेता है? उसे छोड़ दे, मैं तुझे तेरे बाप के पास भेज दूँगा और समय पर तू उसकी अतुल सम्पत्ति का अधिकारी बनेगा।"

परन्तु बालक ने तेजपूर्णस्वर में कहा—"आपकी इस कृपा के लिये धन्यवाद! पर मैं परमेश्वर के नाम पर कष्ट भोगने में सुखी हूँ। प्रभु का घर उत्तम है, और न मुझे मरने का डर है, क्योंकि प्रभु का उपदेश है कि मृत्यु ही उत्तम जीवन देती है।"

न्यायाधीश उसके उत्तर से दङ्ग हो गया। उसने डराने के लिए उसे वध-स्थल पर ले जाने की आज्ञा दी। न्यायाधीश को आशा थी कि बालक भयङ्कर आग को देखकर डर जायगा। पर जब वह लौटकर भी वैसा ही सतेज और निर्भीक बना रहा तो न्याया-

धीश बड़े विचार में पड़ा। वह दया-वश उसे मारना न चाहता था। उसने फिर उसे समझाया। बालक ने कहा—"शीघ्र अपनी तलवार का काम ख़तम कीजिये, ताकि मैं प्रभु के पास जाऊँ। यह द्विविधा का जीवन मुझसे एक क्षण भी नहीं सहा जाता।"

जो लोग आस-पास खड़े थे, रोने लगे। उसने सब से उत्साह-पूर्ण वाक्यों में कहा—"खेद है कि तुम नहीं जानते कि मैं कैसे सुन्दर नगर को जाता हूँ। इस बात को तुम जानते तो निश्चय आनन्दित होते।" इतना कह वह बड़े आनन्द से वध-स्थल की ओर गया।

सन् १६४१ ईस्वी में आयर्लैंड में जब ईसाई लोग पोप के धर्म को छोड़कर प्रोटेस्टेन्ट होने लगे तब पोप ने फतवा दे दिया था कि "तमाम आदमी जो प्रोटेस्टेन्ट हो गये हैं, मार डाले जावें।" उस घोषणा के आधार पर लगभग दो लाख ईसाई बड़ी निर्दयता से मार डाले गये थे। इस महावध की ख़बर सुनकर पोप ने आयर्लैंड में एक बड़ा भारी उत्सव किया था।

ड्यूक आफ आलवा ने—जो कि उस समय नेदर्लैण्ड्स (Netherlands) का गवर्नर था, सहस्रों जल्लाद नौकर रख छोड़े थे जो प्रोटेस्टेन्टों को क़त्ल किया करते थे। दो वर्ष के अन्दर उन्होंने छत्तीस हज़ार ईसाइयों को मार डाला था। जो गाँवों और बस्तियों में बच रहे थे उन पर अतिरिक्त टैक्स लगाकर वह अत्याचारी चार करोड़ रुपया प्रति वर्ष वसूल किया करता था। इसका पोप के दरबार में बड़ा आदर था।

पोपों ने एक गुप्त समाज पहले-पहल स्पेन देश में बनाया, फिर इटली में और पीछे अन्य देशों में भी। इसका नाम इनक्वि-

ज़िशन (Inquisition) अर्थात् कसने का समाज था। इसमें अनेक प्रकार के भयानक शिकंजे मनुष्यों को कसने या उनके अङ्गों को काटने के लिए रक्खे गए। कोई स्त्री, पुरुष या बालक यदि इस अपराध में पकड़ा गया कि वह पोप का विरोधी है तो उसे इसमें कसते थे—कष्ट देकर सब भेद पूछते थे। इसके मेम्बर रात को लोगों के घर में घुस जाते और उन्हें सोते हुए उठा लाते तथा इसमें कस देते थे। इसके सिवा जो लोग इन शिकंजों में दबने से कई दिन तक भी न मरते थे और न पोप के धर्म को स्वीकार करते थे, उन्हें जीता जला दिया जाता था। एक टोलेडा (Toledo) नाम का विशप था जो प्रोटेस्टेन्ट हो गया था। उसने यह उपदेश दिया था कि पोप में क्षमा कराने की शक्ति नहीं है। तुम्हारे प्रभु मसीह का प्रायश्चित ही काफी है। इस अपराध में उसे इस सभा ने ५८ वर्ष तक जेल में रक्खा था। यह हत्यारी सभा सन् १४८१ से सन् १८०८ तक ३२७ वर्ष तक अखंड रूप से चलती रही और इस बीच में इसने ३४१०२१ प्राणियों का वध किया जिनमें ३२ हजार के लगभग जीते जलाये गये, २ लाख ९१ हजार ४५६ अर्थात् कुछ कम ३ लाख ऐसे महा दुःख और कष्ट में डाले गये जो बयान से बाहर हैं। १७॥ हज़ार ऐसे थे जो या तो क़ैद में मरे या निकल भागे—उनके चित्र बनाकर जला दिये गये कि लोग डरें।

आरविन साहब (Arvina) नामक एक विद्वान् ने हिसाब लगाया है कि—

१—पोप जूलियस (Julius) के राज्य-काल में ७ वर्ष के भीतर दो लाख क्रिस्तान मारे गये।

२—फ्रांस में पोपों ने ३ मास में दो लाख ईसाई मारे।

३—फिर वालदेन्सी और आलबीगेन्सी (Waldenses and Albigenses) क्रिस्तानियों में १० लाख आदमी क़त्ल किये।

येसुबीत समाजियों (The Teswits) के तीन वर्ष के बीच नौ लाख ईसाई मारे गये थे। ड्यूक ऑफ आलवा की आज्ञा से ३६ हज़ार ईसाई मारे गये। इस प्रकार धार्मिक अत्याचार की भेंट निरपराध ५ करोड़ ईसाई स्त्री, बच्चे, बूढ़े, जवान मार डाले गये।

हज़रत मुहम्मद ने इस्लाम धर्म की नींव डाली। प्रारम्भ में उन्हें सफलता न मिली। उन्होंने तलवार को धर्म का माध्यम बनाया। उन्होने घोषणा की—

मेरे धर्म के प्रचारकों को तर्क के झगड़े में न पड़कर तलवार पर ही भरोसा करना चाहिए। जो आदमी मेरा धर्म स्वीकार न करे या उस पर सन्देह करे, उसका सिर काट लेना चाहिए। मेरे धर्म में तलवार ही सब कुछ है। जो कोई धर्म-युद्ध में मरे-मारेगा, बहिश्त पावेगा—जहाँ शराब की नदियाँ, उत्तम मांस के पकवान और स्त्रियाँ तथा ग़ुलाम मिलेंगे।

मुहम्मद साहब ने तलवार के ज़ोर से बहुत शक्ति पैदा कर ली और मृत्यु के समय १ लाख के लगभग उनके अनुयायी थे। सारे अरब में इस्लाम धर्म फैल गया। मुहम्मद साहब की कड़ी आज्ञा थी कि सारे अरब में जो मेरे धर्म को अस्वीकार करें उनको क़त्ल कर दो; भाइयों, मित्रों और सम्बन्धियों का भी लिहाज़ न करो। उन्होंने अपने जीवन काल में यमन और शाम देशों पर भी सेनायें भेजी थीं।

उनकी मृत्यु के बाद खलीफा अख्तर ने तुरन्त सारे अरब से सेना इकट्ठी की और उसके चार भाग करके दमिश्क, शाम, फिलस्तीन और ईरान पर चढ़ाई कर दी। इन सेनाओं में लगभग ८० हज़ार मुसलमान सिपाही एकत्र किये गये थे और उन्होंने शाम और दमिश्क की ईंट-से-ईंट बजादी। ऐसे अत्याचार और निर्दयता से मार-काट की कि सारा देश एकबारगी कराह उठा। शाम का बादशाह दो लाख सेना सहित नष्ट-भ्रष्ट कर दिया गया। इस मुहीम के दौरान में एक बार ऐसा हुआ कि खलील सेनापति ४००० हज़ार लिये धावा मार रहा था। मार्ग में उसने कुछ राहगीरों को जा पकड़ा जो नदी किनारे खाना बना रहे थे। स्त्रियाँ भोजन बना रही थीं, बच्चे इधर-उधर खेल रहे थे, पुरुष कपड़े सुखा रहे थे। खलीद ने उन्हें लूटकर क्रूरतापूर्वक काट डाला। सुन्दरी स्त्रियों को क़ैद कर लिया। शाम के बादशाह की बेटी भी उनमें क़ैद करली गई। जब उसका परिचय प्राप्त हुआ तो ख़लीद ने घमंड से कहा—जाकर अपने बाप से कह दे कि इस्लाम धर्म स्वीकार करले वरना मैं उसका सिर काटने के लिये आ रहा हूँ, और उसे छोड़ दिया।

इसके बाद ख़लीफ़ा उमर ने अपने शासन काल की ११ वष की अवधि में शाम, मिश्र और पैलस्टाइन तथा ईरान को पूर्णतया फतह कर लिया था। इस खलीफ़ा ने ३६ हज़ार नगर और क़िले काफ़िरों से छीने, ४० हज़ार गिर्जे और मन्दिर ढहाये, और लगभग ८ लाख स्त्री बच्चे और पुरुष-क़त्ल किये। इनमें एक लाख पारसी थे। फारिस के बादशाह का एक डब्बा जवाहरात का सेना के हाथ लगा था जिसे खलीफा के हुक्म से बेच कर फौज में बाँट

दिया गया। यह हब्बा ३ अरब ७० करोड़ रुपये में बिका। उस समय ४० हजार सेना वहाँ थी, सब को अस्सी-अस्सी हजार रुपये बाँट दिये गये। इसी खलीफा ने पृथ्वी का महान् नगर सिकन्दरिया और संसार का अद्भुत पुस्तकालय नष्ट किया। सिकन्दरिया की नींव बादशाह सिकंदर ने डाली थी। यह नगर एशिया और यूरोप के व्यापार का प्रमुख केन्द्र था।

इसे यूनानी इञ्जिनियरों ने बड़ी सावधानी से बनाया था और इसमें चार हजार महल, पाँच हजार स्नान घर, चार सौ नाट्य शालाएँ बारह हजार बाग़ और अन्यों के अलावा चालीस हजार यहूदी करोड़ पति थे। इस में एक महान् पुस्तकालय था जो अजायब-घर के नाम से मशहूर था। इसमें पृथ्वी-भर की दस लाख पुस्तकें संग्रहीत थीं जिनमें ऐसे ग्रन्थ भी थे जिनका एक-एक का मूल्य पैंतालीस हज़ार रुपये तक था।

जब यह नगर मुसलमानों ने विजय किया तो खलीफा से पूछा गया कि इस पुस्तकालय का क्या किया जाय? उसने उत्तर दिया— "अगर ये किताबें कुरान के अनुकूल हैं तो इनकी आवश्यकता नहीं क्योंकि कुरान ही काफी है। और यदि उसके विपरीत हैं, तो भी उनकी जरूरत नहीं। अतः सब पुस्तकों को नष्ट कर दो।" मुसलमान सेनापति ने पाँच हज़ार हमामों को वे पुस्तकें बाँट दीं जहाँ वे ईंधन के स्थान पर जलाई गईं और इस प्रकार ६ मास तक उनसे हमाम गर्म किये गये।

इसके बाद उस्मान खलीफा हुए। उसने फारिस के मुल्क पर चढ़ाई बोल दी। वहाँ के बादशाह यज्दगुर्द की बाबत खलीफा उमर

कह गये थे कि उसे ज़िन्दा न छोड़ना। इस ख़लीफा ने अनायास ही चार हज़ार वर्ष पुराने उस राज्यवंश और देश को विध्वंस कर दिया। यह १५ वर्ष तक ख़लीफा रहा।

भारतवर्ष में मुस्लिम आक्रमणकारियों के अत्याचार भी कम रोमाञ्चकारी नहीं। गुलाम वश के कुतुबुद्दीन ऐबक ने हाँसी, दिल्ली, मेरठ, अलीगढ़, रणथम्बोर, अजमेर, ग्वालियर, कालिंजर और गुजरात में हाहाकार मचा दिया था। हज़ारों मन्दिर ज़मीदोज़ कर दिये गये, और लाखों स्त्री-पुरुषों को गाजर-मूली की भांति काट डाला। इसके बाद ग़ुलाममुहम्मद ने काशी के हज़ारों मन्दिरों को ढहा दिया और बिहार, बङ्गाल में पाल और सेन वंशीय राजाओं के राज्यों को विध्वंस कर दिया। बारह हज़ार बौद्ध साधुओं को तलवार के घाट उतार डाला और उनका अप्रतिम ग्रन्थागार भस्म कर दिया। उन्होंने अलतमश के प्रसिद्ध मन्दिर को ढहा दिया और करोड़ों रुपये की सम्पदा लूट ली।

जलालुद्दीन फ़िरोज़शाह ख़िलजी ने जेसलमेर पर आक्रमण किया। वहाँ का राजा मारा गया, नगर विध्वंस कर दिया गया और रानी को चौबीस हज़ार राजपूतनियों के साथ जलकर लाज बचानी पड़ी। उसका भतीजा अलाउद्दीन दक्षिण तक बढ़ गया और देवलगढ़ के राजा रामदेव यादव से विश्वासघात करके उसे मार डाला, राज-भवन लूट लिया, मन्दिर ढहा दिये और करोड़ों रुपये की सम्पदा छीन ली। इसके बाद जेसलमेर, चित्तौर और गुजरात पर जिहाद की चढ़ाई की। जेसलमेर में सोलह हज़ार और चित्तौर में तेरह हज़ार स्त्रियाँ भस्म हो गईं। गुजरात के राजा की

रानी और राजकुमारी, अलाउद्दीन के हाथ लगी और उसने उन्हें बलपूर्वक अपनी स्त्री बना लिया।

इस बादशाह ने हिन्दुओं की यह दुर्दशा कर रखी थी कि कोई हिन्दू सवारी के लिए घोड़ा न रख सकता था, न शस्त्र धारण कर सकता था, न बढ़िया कपड़े पहन सकता था। एक बार उसने क़ाज़ी से पूछा कि हिन्दुओं के लिए क्या क़ानूनी अधिकार हैं, तो उसने कहा:—

हिन्दुओं का नाम ख़िराजगुज़ार है। जब मुसलमान हाकिम उससे चाँदी मांगे तो उसे बे उज्र हाथ जोड़कर हाकिम को चाँदी की जगह सोना भेंट करना चाहिए। यदि मुसलमान उसके मुँह में थूकना चाहे या मैला डालना चाहे तो उसे अपना मुँह खोल देना चाहिए कि मुसलमान को तकलीफ न हो क्योंकि खुदा ने हिन्दुओं को महानीच और घृणित बनाया है।"

इसके बाद उसने बादशाह से कहा—"आपके राज्य में काफिरों की यह दुर्दशा हो गई है कि उनके स्त्री-बच्चे मुसलमानों के द्वार पर रोते और भीख माँगते फिरते हैं। इस शुभ काम के लिए खुदा आपको जन्नत न भेजे तो मैं ज़िम्मेदार हूँ।"

पाठक इस धर्म-गुरु की भयानक वृत्तियों से हिन्दुओं की उस दिनों की दयनीय दशा का अनुमान लगा सकते हैं।

मुहम्मद तुग़लक़ ने जहाद में इतना रक्तपात किया कि लाखों आदमियों को गाजर-मूली की भांति कटवा डाला। नाक-कान कटवाना, आँखें निकलवाना, सिर में लोहे की कील ठुकवाना, आग में ज़िन्दा जलवाना, आरे से चिरवाना, खाल खिंचवाना, हाथी से

कुचलवाना, सिंह से फड़वाना, साँप से डसवाना, यह इस व्यक्ति की मनोरञ्जक सजाएँ थीं।

फ़िरोज़शाह तुग़लक ने नगरकोट को बिजय करके गौमांस के टुकड़े तोबड़ों में भरकर हिन्दुओं के गले में लटकवा दिये थे, और उन्हें बाज़ार में फिरा-फिरा कर खाने की आज्ञा दी थी। जिसने इनकार किया उसका सिर काट लिया गया था। जब वह जम्बू गया और वहाँ का राजा उससे मिलने आया तो उसके मुँह में इसने गौ-मांस ठुँसवा दिया।

तैमूर लँगड़ा जहाद का झंडा ले ६२ हज़ार सवार लेकर लूट-मार और क़त्ल करता आया और भटनेर में १ घंटे में उसने १० हज़र स्त्री-पुरुषों को काट डाला। यहां से यह दिल्ली पहुँचा और १ लाख हिन्दुओं के सिर काटकर इसने ईद की नमाज़ पढ़ी। तुजुक-तैमूरी में लिखा है कि इसके प्रत्येक सिपाही ने १५-१५ हज़ार हिन्दू मारे। यहां से वह मेरठ पहुँचा और हज़ारों स्त्री-पुरुषों को क़त्ल किया और हज़ारों को क़ैद किया। प्रत्येक सिपाही के हिस्से में बीस से सौ क़ैदी तक आये। वहां से वह हरिद्वार गया, जहां गङ्गा का पर्व था। वहां लाखों यात्रियों को क़त्ल कर उनके खून से गङ्गाजल को लाल कर दिया।

सिकन्दर लोदी के अत्याचार प्रसिद्ध हैं। बाबर ने जब फ़तहपुर सीकरी को विजय किया तब इतने हिन्दुओं को क़त्ल कराया था कि उसके तम्बू के सामने खून की नदी बह निकली थी। औरंगज़ेब के अन्ध-धर्म के अत्याचार जगत्-प्रसिद्ध हैं। इसने असंख्य मन्दिर ढहाये, कुरुक्षेत्र में लाखों मनुष्यों को मारकर खून की नदी

बहाई, गुरू तेगबहादुर के एक शिष्य को आरे से चिरवाया, दूसरे को खौलते तेल में डलवाकर औटाया, स्वयं गुरू का सिर कटवाया। सत नाम धारी साधुओं का क़त्ल कराया, आदि।

अँग्रेज़ी अमलदारी में यद्यपि इस प्रकार के अत्याचरों के मौक़े नहीं मिलते परन्तु धार्मिक अन्ध-विश्वास के कारण ही मुसलमानों ने मुलतान, मालावार, अजमेर, सहारनपुर, दिल्ली, गोंडा, कोहाट आदि स्थानों में हिन्दुओं पर अत्याचार किये हैं।

जहाद की युद्ध-यात्राएँ करनी इस्लाम धर्म की धार्मिक आज्ञायें हैं। सूराबकर में लिखा है—"जो मुसलमान जहाद में मारा जाय उसे मुर्दा न समझना चाहिये।" सूरानिशा में लिखा है—"काफ़िरों को मित्र मत बनाओ और यदि वे मुसलमान न हो जायँ तो उन्हें मार डालो।" सूराबकर में एक स्थान पर लिखा है—"जिस जगह काफ़िर को देखो, मार डालो और उसे घर से निकाल दो।"

प्राचीन भारत के धर्म-संघर्ष पर भी एक दृष्टि डालिये। बुद्ध की मृत्यु के ढाई-सौ वर्ष के अन्दर, उस समय के हिन्दू धर्म को भारत से निकाल कर बौद्धों ने अपना एकाधिकार कर लिया था। परन्तु पुरोहितों की ओर से बराबर उनके विरुद्ध विद्रोह की आग सुलगती ही रही। धीरे-धीरे प्रतिमा-पूजन हिन्दू और बौद्ध दोनों में प्रचलित हुआ; फिर वैष्णव, शैव, शाक्त सम्प्रदाय बढ़े और सबने मिलकर बौद्ध-धर्म को निकाल बाहर किया। अपने काल में बौद्धों ने बड़े-बड़े भयानक अत्याचार किये थे। बल-पूर्वक नागरिकों की सम्पदा का हरण करते, उनके उत्तराधिकारियों को भिक्षु बनाते और न जाने क्या-क्या अन्धेर करते थे। अन्त में हिन्दुओं ने बौद्धों को नगर से

बाहर मरघटों में रहने को विवश किया, और पुरोहितों व पण्डों के अत्याचार-पूर्ण जीवन फिर आनन्द-पूर्वक व्यतीत होने लगे।

आज भी धर्म-सम्बन्धी सारे अत्याचार वैसे ही बने हुए हैं। धार्मिक अत्याचारों का एक प्रमाण तो यह है कि आज छः करोड़ अछूतों को हिन्दुओं ने पैरों में बलपूर्वक कुचल रक्खा है। उनकी स्त्रियां, बच्चे, बुजुर्ग, किसी को भी उन्नत होने देना अपराध समझा जा रहा है। यह धार्मिक अत्याचार ही है कि निकम्मे, मूर्ख, ठग, भिखारी ब्राह्मण सिर्फ ब्राह्मण-जाति में जन्म लेने के कारण ही श्रेष्ठ समझे जाते हैं और अन्य जाति के श्रेष्ठ पुरुष नगण्य समझे जाते हैं। यह धार्मिक अत्याचार ही है कि करोड़ों विधवाएं बचपन से वृद्धावस्था तक मृतपति के नाम को रोती हैं, जिसे उनमें से बहुतों ने कभी देखा तक भी नहीं।

भविष्य में यह धार्मिक अत्याचार नहीं रहने पावेंगे। इन धर्म ढकोसलों को नष्ट करके प्रत्येक मनुष्य को आज़ाद होना होगा। वह दिन दूर नहीं है—जब कि अछूतों, विधवाओं, ग़रीबों और शूद्रों को मनुष्योचित अधिकार प्राप्त होंगे और उन्हें हर प्रकार से अपने जीवन को उन्नत बनाने के अवसर दिए जायेंगे।

---

(५)

हत्या

कुछ दिन पूर्व देशाटन करते हुए मुझे श्री वैद्यनाथ-धाम जाने का अवसर प्राप्त हुआ था। उस दिन विजय-दशमी थी। मन्दिर में बहुत से बाहर के यात्री आए हुए थे। हम लोग स्नान आदि से निवृत्त होकर पण्डे के साथ मन्दिर को चले। ज्योंही हमने मन्दिर के प्राङ्गण में प्रवेश किया कि देखा—एक व्यक्ति कुछ विचित्र-सी वस्तु केले के पत्ते में लपेटे बड़ी स्वच्छता से लिए जा रहा है। वह ब्राह्मण था। जनेऊ गले में डाले था। तिलक भी सारे अङ्ग पर लगा था। मेरे पास एक बालक था, उसने पूछा—यह क्या चीज़ है? मैं स्वयं भी उसे कोई अद्भुत फल समझा— पर ज्योंही वह निकट होकर गुजरा तो मैंने देखा कि वह बकरे की दो टांगें थीं।

मैंने चौकन्ना होकर पण्डे से पूछा—कि यह क्या है? उसने कहा—माई का भोग है। मन्दिर के विशाल प्राङ्गण में आकर जो देखा, उसे देख कर आंखें खुल गईं। मैंने अपनी आंखों से जीवित पशु का हनन इतने निकट से कभी नहीं देखा था, पर वहां सम्मुख मैंने देखा कि यथार्थ नाम खून की नदी बह रही है, सैकड़ों धड़ इधर-उधर तड़प रहे हैं, और एक-एक क्षण में खटाखट हो रही है। इतना अधिक रक्त एकबारगी ही देखकर और ऐसा भयानक

दृश्य देख कर मेरी पत्नी और बालक तो इस तरह भयभीत हुए कि मैंने समझा कि वे बेहोश हो जायेंगे। मैं स्वयं भी बहुत ही विचलित हो उठा, पर तुरन्त मैं एक कदम और आगे बढ़ गया और ग़ौर से वह अभूतपूर्व दृश्य देखने लगा।

मन्दिर का प्राङ्गण बहुत विशाल था। उसमें पचास हज़ार मनुष्य खुशी से समा सकते थे, और उस समय पन्द्रह बीस हज़ार से कम स्त्री-पुरुष वहां न होंगे। हठात् वेग से खांडा पड़ता और धड़ रक्त का फव्वारा छोड़ता हुआ धरती पर तड़पने लगता। सिर को मन्दिर के चबूतरे पर खड़ा हुआ पुजारी रस्सी के सहारे फुर्ती से ऊपर खींच लेता। पांच आने पैसे, एक नारियल और कुछ पुष्प एक दोने में रख कर सिर के साथ पशु के स्वामी को और देने पड़ते, तब वह स्वयं जाकर सिर को देवी की भेंट कर सकता था। वहां से उसे दोने में प्रसाद मिलता। वह बाहर आकर अपने पशु का धड़ खींच कर एक ओर ज़रा हट कर बैठ जाता और उसकी खाल उधेड़ना शुरू करता। पण्डे लोग भी जुट जाते और वहीं उसके खण्ड-खण्ड करके हिस्से बांट लिये जाते। हिस्से बांटने में खूब 'तू-तू मैं-मैं' होती थी।

मन्दिर में चारों ओर यही बूचड़खाना फैला हुआ था। मेरे पैरों में मानों लोहे की कीलें जकड़ दी गई थीं। मैं लगभग ८ या ८॥ बजे मन्दिर में घुसा था और एक बजे तक, जब तक कि बधिक अपना काम करता रहा, वहीं खड़ा रहा। मेरी पत्नी और साथी लोग हताश होकर एक तरफ हट कर बैठ गये थे। मैंने हिसाब लगा कर देखा, कुल मिला कर लग-भग बारह सौ बकरे वहां मेरे

सन्मुख काटे गये और तीन या चार भैंसे। भैंसों के सिर काटने, उनके तड़पने, उनके सिर को यूप में फसाने का दृश्य अत्यन्त भयानक और राक्षसी था। आज भी मैं उस दृश्य को याद करके भयभीत हो जाता हूँ। यह अनिवार्य था कि एक ही प्रहार में सिर कट जाय और वह सिर धरती में न गिरने पावे।

मैंने फिर मन्दिर की मूर्त्ति नहीं देखी। लौट कर स्नान किया और धर्मशाला से सामान उठा स्टेशन की राह ली। उस पापपुरी में हम लोग अन्न-जल ग्रहण न कर सके।

वहां मैंने मछलियों के खुले बाजार देखे। आंगन की एक ओर शिवजी का मन्दिर था और दूसरी ओर देवी का। दोनों मन्दिरों के कलशों पर बहुत-सी लाल रंग की कत्तरें बंधी थीं, जिनका एक सिरा इस मन्दिर के कलश में और दूसरा दूसरे के कलश में था। देवी के मन्दिर का चबूतरा इतना ऊंचा था कि खड़े मनुष्य की गर्दन तक आता था। उसी के सामने एक काष्ठ का यूप खड़ा था, जिसमें एक गढ़ा इस भांति किया गया था कि उसमें पशु की गर्दन आसानी से आ सके। गर्दन फसाकर एक छिद्र द्वारा लोहे के एक सींखचे से उसे अटका दिया जाता था। चबूतरे पर एक आदमी हाथ में एक छींका जैसी वस्तु रस्सी के सहारे पकड़े खड़ा था। वधिक ब्राह्मण था, और वह स्नान कर तिलक-छाप लगाये, स्वच्छ जनेऊ पहिने, हाथ में खांडा लिए खड़ा था। प्रत्येक जीव की हत्या करने की उसकी फीस एक आना थी। इकन्नियों की उस पर वर्षा हो रही थी। उसने अपनी धोती में एक पोटली बांध रक्खी थी, जिसमें वह उन इकन्नियों को डाल

रहा था। लोग अपने-अपने पशुओं को, कोई धकेल कर, कोई कन्धे पर, कोई रस्सी द्वारा खींच कर और कोई मारता हुआ ला रहा था। मैंने भलीभांति देखा—प्रत्येक पशु अपनी भावी-मृत्यु को समझ रहा था और वह भय से कम्पित और अश्रुपूरित था। सब पशु आर्तनाद कर रहे थे। कटे हुए सिरों के ढेर और फड़कती हुई लाशों को देखकर मूर्छित से होकर गिरे पड़ते थे। प्रत्येक आदमीकी इच्छा पहिले अपना पशु कटाने की थी और प्रत्येक व्यक्ति आगे बढ़कर अपनी इकन्नी वधिक के हाथमें देना चाहता था। वधिक इकन्नी टेंट में रखता और पशु का स्वामी पशु को यूप के पास धकेलता। वधिक का सहायक फुर्ती से उसकी गर्दन यूप में फँसाकर यूप के छेद में लोहे का सरिया डालता और छींका उसके मुख पर लगा देता।

मन्दिर के एक स्थान पर स्त्रियां दोनों में कुछ अद्भुत घिनौनी वस्तु लिये बैठी थीं। सड़ी हुई लीची को छील कर रखने से जैसी आकृति होती है, वैसी वह चीज थी, पूछा तो कहा— आंखें हैं, अर्थात् मरे हुए पशुओं की आंखें निकाल कर एकत्र की गई हैं। पूछा कि इनका क्या होता है? कहा—खाते हैं।

मैंने इस घटना से दस वर्ष पूर्व जयपुर आमेर की शिलादेवी के आंगन में बकरे का वध होते देखा था, और विन्ध्याचल के मन्दिर में साधारण दृश्य देखा था—पर ऐसा भयानक रोमांचकारी बूचड़खाना, और खुलेआम पशुओं का वध इतनी अधिक संख्या में मैंने नहीं देखा। मेरी इतनी अभिरुचि देखकर पंडे ने मुझे भी एक बकरा माई की भेंट करने को प्रोत्साहित किया और कहां से वह सस्ता बकरा ले आवेगा यह भी उसने बताया।

वहां से मैं कलकत्ते गया। वहां काली जी के मन्दिर में भी मैंने अल्प संख्या में यही दृश्य देखा, और इसी भांति का मांस-विक्रय का बाजार भी देखा। अन्य काली, दुर्गा आदि के मन्दिरों में इसी प्रकार से पशु-वध होते ही हैं और मेरे लिये यह अनोखी घटना थी—पर हिन्दू जाति के धर्म-तत्व को जो भाग्यवान् लोग समझते हैं—वे जानते हैं कि इसमें अनोखा कुछ भी नहीं है। सब स्वाभाविक ही है।

मन्दिरों में देवताओं के सामने पशु-वध करना केवल भारतवर्ष में ही नहीं प्रत्युत किसी जमाने में सारे संसार की पुरानी जातियों में प्रचलित था। रोम, ग्रीस, मिस्र और दूसरी उन्नत जातियां भी देवताओं के सामने पशु-हत्या करती थीं और इसे वे पवित्र कर्म मानती थीं।

यदि विचार कर देखा जाय तो यह विधि यज्ञ की हिंसाओं से ही चली है।

यज्ञ में पशु-वध की परिपाटी कब से चली—इस सम्बन्ध में ठीक-ठीक मालूम नहीं हुआ है। परन्तु ऐसा प्रतीत होता कि भारत के साथ मध्य-एशिया की जातियों का, जो समय-समय पर संघर्ष होता रहा था, भारत की अनार्य जातियों का जो आर्य्यों से सम्पर्क रहा, उनसे ब्राह्मणों के यज्ञ में पशुवध प्रचलित हुआ, क्योंकि वे सभी जातियां बलिदान को पवित्र कार्य समझती थीं। यज्ञमें बलिदान देने के विषय में शतपथ ब्राह्मण (१।२।३।७।८) में लिखा है—

"पहले देवताओं ने मनुष्य को बलि दिया, जब वह बलि दिया गया तो यज्ञ का तत्व उसमें से निकल गया—और उसने घोड़े में

प्रवेश किया। तब उन्होंने घोड़े को बलि दिया। जब घोड़ा बलि दिया गया तो यज्ञ का तत्व उसमें से निकल गया और उसने बैल में प्रवेश किया। तब उन्होंने बैल को बलि दिया। जब बैल बलि दिया गया तो यज्ञ का तत्व उसमें से निकल गया और उसने भेड़ में प्रवेश किया। जब भेड़ को बलि दिया गया तो यज्ञ का तत्व उसमें से निकल गया और उसने बकरे में प्रवेश किया। तब उन्होंने बकरे को बलि दिया, तो यज्ञ का तत्व उसमें से भी निकल गया और तब उसने पृथ्वी में प्रवेश किया। तब उन्होंने पृथ्वी को खोदा और उसे चावल और जौ के रूप में पाया।"

ब्राह्मण ग्रन्थों के बाद सूत्रकाल में ब्राह्मणों के विस्तृत वर्णनों को स्रोत सूत्रों में वर्णन किया गया है। ये स्रौत सूत्र बौद्ध काल तक बनते रहे और इनमें मांस का यज्ञों में खूब उपयोग होता रहा है।

बलिदान की संख्या यज्ञ के अनुसार होती थीं। अश्वमेध यज्ञमें सब प्रकार के पालतू और जङ्गली जानवर, थलचर, जलचर, उड़नेवाले रेंगने वाले और तैरने वाले मिला कर ६०९ से कम नहीं होते थे।

कृष्ण यजुर्वेद के ब्राह्मण में यह ब्यौरा लिखा है कि छोटे-छोटे यज्ञों में विशेष देवताओं को प्रसन्न रखने के लिये किस प्रकार का पशु मारना चाहिए। गोपथ ब्राह्मण में बताया गया है कि उसका क्या-क्या भाग किसे मिलना चाहिए। पुरोहित लोग जीभ, गला, कन्धा, नितम्ब, टांग इत्यादि पाते थे। यजमान पीठ का भाग लेता था, और उसकी स्त्री को पेडू के भाग से संतोष करना पड़ता था।*

---

* अर्थात: सवनीयस्य पशोर्विभागं व्याख्यास्यामः; उद्धृत्यावदानि हनू सजिह्वे प्रस्तोतुः कठः स ककुद्‌ः प्रतिहर्तुः। श्येनं, पक्ष

शतपथ ब्राह्मण में इस विषय में एक मनोहर विवाद है कि पुरोहितको बैल का मांस खाना चाहिये या गायका। अन्तमें परिणाम निकाला गया है कि दोनों ही मांस न खाने चाहिएँ। परन्तु याज्ञवल्क्य हठपूर्वक कहते हैं--यदि वह नर्म हो तो हम उसे खा सकते हैं।"÷

इस पवित्र मांस-भक्षण का प्रभाव उपनिषदों तकमें हो गया। बृहदारण्यक उपनिषद् में लिखा है कि जो कोई यह चाहे कि मेरा पुत्र विद्वान्, विजयी और सर्व वेदों का ज्ञाता हो—वह बैल का मांस चावल के साथ पका कर घी डाल कर खाय।×

उद्गातुर्दक्षिणं पार्श्वं सांस मब्वर्योः, सत्यमुपगात्रीणां सव्योंसः प्रति प्रस्थातुर्दक्षिणा श्रेणी रथ्यास्त्री ब्रह्मणो वस्स कथ्यं, ब्रह्मच्छासितः उरुः पोतुः सव्या श्रोणिर्होतुरपरसक्थं मैत्रावरुणस्योऊरच्छ् धाकस्य, दक्षिणादोर्नेष्टुः सव्यान्सदस्यस्य ादंचानकं च गृहपतेर्जाघ्नी पत्न्यास्तासां ब्राह्मणो न प्रति ग्राहयति, वनिष्टुर्हृदयं वृक्कौ चांगुल्यानि दक्षिणो बाहुरग्निधस्य सव्य आत्रेयस्य दक्षिणौ पादौ। गृहपते र्घृतपदस्य, सव्यौपादौ गृहपत्न्या वृतप्रदायाः (गोपथ ब्रा० ३।१८)

÷सधेन्व चानडुहश्चनाश्नीयाद्धेनवनडुहौ व इदथ्ं सर्वं विभ्रितस्ते देवा अब्रुवन् धेन वनडुहौ वा इदथ्ं सर्वं विभ्रितो हन्त यदन्येषां वयसां वीर्यं तद्धेन वनडुहयोर्दधामेति तद्वहो वाच याज्ञवल्क्य। श्नाम्येवाहमाथ्ं सलचेन्दूभवतीति। (श०३।१।२।२१)

×अथ य इच्छेत् पुत्रों में पण्डितो विजिगीतः समितिगमः सुश्रुषितावाचं भाषिता जायेत सर्वान्वेदाननुब्रवीतसर्वमायुरियादियात माथ्ं सौदनीं पाचयित्वा सर्पिष्मन्त मश्नियातामीश्वरो जनयीत वा औषणेन वा ऋषभेण वा (बृह० उ० ८। ४। १८)।

ऐसा प्रतीत होता है कि इस प्रकार की घृणास्पद हत्यायें लोगों को अप्रिय प्रतीत होने लगी थीं, और लोगों ने उनका विरोध करना शुरू कर दिया था। महाभारत में लिखा है—'वेद में जो 'अज' से यज्ञ करने को लिखा है उसका अर्थ बीज है, बकरा नहीं।'

'गायें अवध्य हैं, इन्हें न मारना चाहिये।'

'हिंसा धर्म नहीं है।'

चार्वाक सम्प्रदाय वालों ने उपहास से कहा था—

'यदि पशु को मारने ही से स्वर्ग मिलता है तो यजमान अपने माता-पिता को ही क्यों नहीं मारकर हवन कर देते।'

मत्स्यपुराण अध्याय १४३ में यज्ञ के विषय में एक मनोरंजक उपाख्यान है। ऋषि पूछने लगे—स्वयंभुव मनु के समय त्रेतायुग के प्रारम्भ में यज्ञ का प्रचार कैसे हुआ?...

सूत जी ने कहा—वेद मन्त्रों का विनियोग यज्ञ कर्म में करके इन्द्र ने यज्ञ का प्रचार किया.....जब सामगान होने लगा और पशुओं का आलंभन चलने लगा तब महर्षिगणों ने उठकर इन्द्र से पूछा—तुम्हारी यज्ञ विधि क्या है? यह पशु-हनन की विधि तो अनुचित है, यह धर्म नहीं अधर्म है। तुम धान्य से यज्ञ करो।

पर इन्द्र नहीं माना। तब ऋषि सम्राट् वसु के पास गये और कहा हे उत्तानपाद के वंशधर! तूने कैसी यज्ञ विधि देखी है सो कह।

वसु ने कहा—द्विजों के मध्य पशुओं से तथा फल-फूलों से यज्ञ करना चाहिये। यज्ञ का स्वभाव ही हिंसा है।

यह सुनकर ऋषि ने उसे श्राप दिया, जिससे उसका अधःपतन हो गया।

यही कथा कुछ फर्क से वायुपुराण में भी है। महाभारत में भी यह मजेदार घटना है—

इन्द्र ने भूमि पर आकर यज्ञ किया। जब पशु की जरूरत हुई तब बृहस्पति ने कहा—पशु के स्थान पर आटे का पशु बनाओ। यह सुनकर देवता चिल्ला उठे कि बकरे के मांस से हवन करो।

तब ऋषि ने कहा—नहीं धान्यों से यज्ञ करना चाहिये। बकरा मारना भले आदमियों को उचित नहीं। तब वह सम्राट् वसु के पास गये और पूछा कि यज्ञ बकरे के मांस से करें या वनस्पतियों से ?

तब राजा ने कहा—पहले यह कहो कि किस का क्या मत है। तब ऋषियों ने कहा—धान्य हमारा मत और पशु-हनन देवों का।

वसु ने कहा तब बकरे के मांस से ही यज्ञ करना चाहिये। तब ऋषियों ने उसे शाप दिया।

महाभारत (शांतिपर्व अ० ३४०) में इस बात पर प्रकाश डाला गया है कि यज्ञों में पशुवध वैदिक काल से बहुत पीछे चला है।

श्रीमद्भागवत् (४।२५।७।८) में एक यज्ञ के विषय में लिखा है—हे राजन्! तेरे यज्ञ में जो हजारों पशु मारे गये हैं, तेरी उस क्रूरता का स्मरण करते हुए वे क्रोधित होकर तीक्ष्ण हथियारों से तुझे काटने को बैठे हैं।

एक बार मैं दिल्ली में कालिका जी के मेले में कुछ मित्रों के साथ गया। एक ने कुछ मिठाई मन्दिर में चढ़ाई थी। वहाँ से वह प्रसाद लाकर जब बाँटने लगे तब दौने में से बकरे का एक कटा हुआ कान निकला। तब उन्होंने दौना फेंक अपनी राह ली।

सुअर मुर्गे का बलिदान हिन्दू समाज की नीच जातियों में होली-दिवाली को अत्यन्त आवश्यक चीज़ समझी जाती रही है। देखा-देखी उच्च जाति के हिन्दू भी यह काम करते हैं।

दया मानवीय स्वभाव का सब से भारी गुण है। मूक और असहाय पशु-पक्षियों पर निर्दय होना मनुष्य के लिए सर्वाधिक कलङ्क की बात है। ज्यों-ज्यों सभ्यता बढ़ती जाती है, मनुष्य की क्रूरता कम होनी चाहिए। शृङ्गार के लिए यूरोप की स्त्रियें जिन सुन्दर पक्षियों के पर टोपी में रखती थीं उनकी नसल का अन्त हो गया—वे सुन्दर पक्षी अब फ्रांस में हैं ही नहीं। लन्दन में एक व्यापारी ने एक वर्ष में ३२ लाख उड़ने वाले, ८० हज़ार पानी के और ८० हज़ार अन्य पक्षियों का केवल परों के लिए वध करवाया था। विलायत के एक शहर से ३ दिन में चौबीस लाख लावा मार कर एक बार लन्दन भेजे गये थे।

जब तक मनुष्य के हृदय में पशुओं के प्रति प्रेम नहीं होता, मनुष्य का हृदय परिवर्तित न होगा और घृणास्पद हत्याएँ बराबर ही होती रहेंगी।

कुछ दिन पूर्व पूने के मराठी-पत्र 'केसरी' में एक यज्ञ का हाल छपा था। इसे किसी ब्राह्मण ढुंढिराज गणेश वापट दीक्षित सोमयाजी ने लिखा था। उसका वर्णन इस प्रकार है—गत फ़रवरी मास में मैंने औंध में अग्निष्टोम नामक सोमयज्ञ किया था और उसमें पशु-हनन करके उसके अङ्गों की आहुतियाँ दी थीं। उस पशु-हनन के सम्बन्ध में वैदिक धर्म की आज्ञा न जानने वालों (?) ने बहुत कुछ लेख अखबारों में लिखे थे।

ब्राह्मणादि त्रैवर्णियों के वर्णाश्रम विहित् कर्तव्यों में यज्ञकर्म मुख्य है। यज्ञ में हवन मुख्य है और हवन में अनेक देवताओं के उद्देश्य से मन्त्र-पठन पूर्वक विविध पदार्थों की आहुतियाँ दी जाती हैं। जैसे आज्य, चरु, पुरोडाश, सोमरस ये द्रव्य हैं, तथा अज, मेष आदि पशुओं के अवयवों का मांस भी है।

भारतीय युद्ध के पश्चात् जैन और बौद्धों ने वैदिक धर्म पर बड़ा भारी हमला किया—जिससे वैदिक यज्ञ संस्था को बड़ा भारी धक्का लगा। तथापि तत्पश्चात् गुप्त-वंशीय राजा लोग, शातकर्णी, चालुक्य, पुलकेशी आदि राजाओं ने अश्वमेघ जैसे यज्ञ (जिनमें ३०० पशुओं का हनन विहित है।) किये और वैदिक परम्परा को स्थिर किया। राजा जयसिंह ने भी अश्वमेघ यज्ञ किया था। यद्यपि हिंसा हिंसा नहीं है। छांदोग्य उपनिषद् में कहा है कि--

'माहिंस्यात्सर्वाणि भूतानि अन्यत्र तीर्थेभ्यः।'

तीर्थनाय शास्त्रानुज्ञा विषय, ततोऽन्यत्रत्यर्यः।

(शांकर भाष्य)

शास्त्र की आज्ञानुसार जो कर्म किया जाता है—वही तीर्थ है। इस प्रकार के कर्मों को छोड़ अन्य कर्म में हिंसा न करनी चाहिये। तात्पर्य श्रीशंकराचार्य भी यज्ञीय-हिंसा के विरोधी नहीं थे।

देवताओं के उद्देश्य से यज्ञ प्रसंग में वेदोक्त विधि से जो पशु-हनन होता है—उसका नाम हिंसा नहीं है। अपना पेट भरने के लिये मांस खाने की इच्छा से जो पशु-हनन होता है वही हिंसा है। वेदोक्त पशु-हिंसा में देवताओं के लिये मांसाहुतियाँ समर्पित करना ही मुख्य उद्दिष्ट होता है। हुत शेष मांस का भक्षण करना भी

विधि-विहत है। अतः शास्त्राज्ञा रक्षण करने की इच्छा से ही (?) इस हुत शेष का मांस भक्षण किया जाता है।

वर्णाश्रम विहित होने ही से यज्ञीय पशु-हिंसा की जाती है। सोम योग में पशु-हिंसा के बिना कर्म पूर्ण ही नहीं हो सकता। जो निन्दक अविचार से तथा वेद शास्त्र की मर्यादा का उल्लङ्घन करके इस प्रकार के सोमयोगादि वैदिक कर्मों का उपहास करते हैं, उनसे यज्ञ-कर्त्ता लोग कम अहिंसावादी हैं, ऐसा नहीं कहा जा सकता। अहिंसा परम धर्म अवश्य है, पर उसमें भी अपवाद हैं। क्षत्रिय जिस प्रकार मृगया और युद्ध में हिंसा करते हैं, उसी प्रकार यज्ञ-कर्त्ता यज्ञ-विधि के कारण पशु-हनन करते हैं।

यज्ञ में जिस रीति से पशु-हनन होता है—वह शस्त्र-वध की अपेक्षा कम दुःखदाई है।

उत्तर दिशा की ओर पैर करके पशु को भूमि पर लिटाना चाहिये, पश्चात् श्वासादि प्राण वायु बन्द करके नाक मुख आदि बन्द करें। इत्यादि सूचनाएँ शास्त्रों में कही हैं—

उदीचीनां अस्यपदो निदधात्।
अन्तरे वोष्मांण वारयतात्॥
(ऐ० ब्रा० ६।७)

तथा—

अमायु कृण्वन्तं संज्ञय यतात्॥
(तै० ब्रा० ३।६।६)

अर्थात्—पशु का हनन उसे न्यून-से-न्यून दुःख देते हुए करना चाहिये।

पाठक स्वयं ही इस धर्म के पापरूप को समझ सकते हैं।

(६)

व्यभिचार

ईसा के पूर्व पाँचवी शताब्दी में बाबल के लोगों की प्रत्येक स्त्री को अपने जीवन में एक बार देवी माई लिट्टा के मन्दिर में आकर, अपने आपको उस परदेशी पुरुष को सौंप देना पड़ता था जो देवी को भेंट-स्वरूप सबसे पहले उसकी गोद में पैसा फेंकता था। इस धार्मिक व्यभिचार का आधार यूरोप में इस विश्वास पर था कि मानवों की उत्पादन शक्ति प्रकृति की उर्वरता को बढ़ाने में एक रहस्यमय और पवित्र भाव रखती है। कालान्तर में यह भी समझा जाने लगा कि देवी या देवता के पुजारियों के साथ सम्भोग करने से स्त्री का बाँझ होने का भय नहीं रहता। भगवत्-पूजा में सम्भोग की पवित्रता में किसी को ऐतराज न था।

परदेशी जो पैसा फेंक देता था, वह देवी की भेंट चढ़ाया जाता था। और स्त्री उस परदेशी के साथ देवी की पूजा का विधान सम्पूर्ण कर उससे सहवास करती और फिर घर लौटकर निर्दोष समझी जाती थी। इसी प्रकार के रिवाज पश्चिमी एशिया के दूसरे भाग में जैसे उत्तरीय अफ्रीका, साइप्रस, और पूर्वीय मेडिटरेनियम के दूसरे टापुओं में, तथा यूनान, में भी थे। यूनान के प्रसिद्ध नगर 'कोरिन्थ' में किले के ऊपर 'एफ्रोडाइट' देवी का मन्दिर था। इस मन्दिर

में एक हज़ार से ऊपर देव-दासियाँ थीं। ये देवी के सामने नाचती गाती थीं—देश पर विपत्ति आने पर ये ही देवी से उनके दूर करने की प्रार्थनाएँ किया करती थीं, और इस कारण इनका बड़ा मान होता था। ये स्त्रियाँ अन्य पुरुषों से धन लेकर उनकी कामेच्छा भी तृप्त किया करती थीं।

यूरोप में इस्तार देवी का एक मन्दिर था। यह उर्वरता की देवी समझी जाती थी। इसकी उपासिकाएँ वेश्याएँ ही रखी जाती थीं। इन्हें 'कादिस्तू' की उपाधि मिलती थी, जो बहुत ही पवित्र उपाधि कहलाती थी।

"हीरोडोटस" के पहले इस प्रकार का व्यभिचार वृक्षों की ओट में होता था और वह धार्मिक समझा जाता था। डा० जे० जी० फ्रेज़र ने अपनी 'ऐडोनिस ऐटिस ओसिरिस' नामक पुस्तक में लिखा है कि "प्रकृति की उत्पादिका शक्ति की उपासना विविध नामों से होती थी, पर उसका ढंग प्रायः एक ही-सा था। उधर महादेवी और देवता का संयोग होता था तो इधर पुजारिनों और यात्रियों का जोड़ा बंध जाता। यूनान के कौरिन्थ नगर में वीनस की मूर्ति की पुजारिनें भी वेश्याएँ ही थीं और वे बड़ी श्रद्धा और भक्ति की दृष्टि से देखी जाती थीं।

ईसा की दूसरी शताब्दी तक यूनान में यह प्रथा थी कि देवी-सेवा के लिए उच्च घराने की स्त्रियाँ व्यभिचार करती थीं। इस प्रथा को बादशाह कान्टेण्टाइन ने बन्द कर दिया था।

दक्षिण भारत में देव मन्दिरों में देव-दासियाँ रहती हैं। बचपन में इनके माता-पिता इन्हें मन्दिर में चढ़ा जाते हैं—वहीं ये बड़ी

होती हैं। इनका मुख्य काम देव-प्रतिमा के सन्मुख नाचना है। ये उस देवता के साथ ब्याही होती हैं। इनमें से कुछ सुन्दर स्त्रियाँ पण्डे पुजारियों के व्यभिचार की सामग्री होती हैं, शेष देव-दर्शन को आये हुये यात्रियों की काम-वासना को पूरी करके जीवन-निर्वाह करती हैं। ये देव-दासियाँ जगन्नाथ से लेकर दक्षिण के सभी मन्दिरों में नाचती हैं। बचपन में ही जब इनके माता-पिता इन्हें मन्दिरों में दान कर जाते हैं—तब मन्दिर के तत्वावधान में उस्ताद लोग इन्हें नाचने गाने की शिक्षा देते हैं। इससे प्रथम एक रस्म अदा की जाती है कि इनका विवाह देवता की तलवार, फूल, या मूर्ति के साथ कर दिया जाता है। ये मन्दिरों में या मन्दिरों के आस-पास रहा करती हैं। उनके गुज़ारे के लिये मन्दिर से एक बंधी रक़म मिल जाया करती है।

मद्रास के चिंगलपट ज़िले के कोरियों (कपड़ा बुनने वालों) में यह रीति है कि वे अपनी सबसे बड़ी, कहीं कहीं पाँचवी लड़की को किसी मन्दिर में दान कर देते हैं। इस प्रकार दान की हुई कन्या महाराष्ट्र में 'मुरली' कहाती हैं; और तैलंग में 'वसब' कहाती हैं, मद्रास व बम्बई प्रान्तों में उनके भिन्न-भिन्न नाम हैं। जैसे योगनी, भावनी, नकनी, कलावन्ती, देवली, जोगती, मतंगीशरणा आदि।

ये स्त्रियाँ मन्दिरों में तो नाचती ही हैं परन्तु विशेष अवसरों पर बुलाने से अमीरों के घरों पर भी नाचने-गाने जाती हैं। यह गले में जेवर पहिनती हैं, उनमें इनके देवता की मूर्ति भी चित्रित रहती हैं। कोई इस मूर्ति को केसरिया धागे में पिरोकर गले में पहिनती हैं और उसे अपने सौभाग्य का चिन्ह समझती है।

मालूम होता है कि देव-दासियों की प्रथा बहुत पुरानी है। कालीदास ने अपने मेघदूत काव्य में उज्जैन के महाकाल के मन्दिर में इनके नृत्य की चर्चा इस भांति की है—

पादान्यासैः क्कणितरशनास्तत्रलीलावधूतैः,
रत्नच्छाया खचित बलिभिश्चामरैः क्लान्तहस्ताः।
वेश्यास्त्वत्तोनखपदसुखान्प्राप्यवर्षाग्रविन्दृ—
नामोच्यन्ते त्वयिमधुकर श्रोणिदीर्घान्कटाक्षान्।

बुद्ध भगवान के सन्मुख भी गया में एक वेश्याओं का झुण्ड नाचता गाता आया था। यह गया के इन्द्रदेव के मन्दिर की देव-दासियाँ थीं। इसका आकर्षक वर्णन अँग्रेजों की प्रसिद्ध पुस्तक 'लाइट आफ़ एशिया' में किया गया है।

देवदासियों की सम्पत्ति का अधिकार पुत्रों को नहीं पुत्रियों को होता है।

जगन्नाथजी के मन्दिर में जो देवदासियां होती हैं, वे गान्धारी कहाती हैं। वहां उनके १०८ घर हैं, जो बारी बारी से दिन में तीन बार मन्दिर में नाचने जाती हैं। ये दासियाँ सिर्फ नाचती हैं, गाती नहीं। इनकी एक जाति बनगई है, और उपर्युक्त १०८ घरों में ही वे परस्पर शादी सम्बन्ध करती हैं।

कुछ दिन हुए, बड़ी व्यवस्थापिका सभा में देवदासियों के सम्बन्ध में एक बिल पेश हुआ था—परन्तु बहुत लोगों ने इसे धर्म में हस्तक्षेप करना बता इसका विरोध किया और वह बिल पास न हुआ। सुना है कि महाराजा बड़ौदा ने अपने राज्य के मन्दिरों में देवदासियों को बनाना भविष्य के लिये बन्द कर दिया है।

शाक्त सम्प्रदाय का भैरवी-चक्र, पंचमकार आदि, जिनका मध्यकाल में बहुत जोर होगया था—और उत्तर भारत, नैपाल आदि में जो अब भी एक बिखरी रीति के स्वरूप में देखने को मिलते हैं, गम्भीरता से—धार्मिक व्यभिचार की दृष्टि से मनन करने योग्य विषय है। नैपाल में, सुना गया है कि भैरवी-चक्र और नैशोत्सव अब भी होते हैं और बहुत लोग उसी के मानने वाले हैं। वहां जाति पांति का और गम्य अगम्य का कोई भेदभाव नहीं है। तन्त्र ग्रन्थों में इस सम्बन्ध में बहुत ही कुत्सित बातों का वर्णन किया गया है। 'शिवउवाच', 'पार्वत्युवाच', 'भैरवउवाच' इत्यादि नाम लिख कर सर्वथा नीति, धर्म और सभ्यता से हीन बातें लिखी गई हैं। 'कालीतन्त्र' में लिखा है—

मद्यं मासं च मीन च मुद्रा मैथुन मेव च।
एते पंच मकारास्युर्मोक्षदाहि युगे युगे॥

अर्थात्—मद्य, मांस मछली, मुद्रा (पूरी, कचौरी, बड़े) और मैथुन—ये पांच मकार युग-युग में मोक्ष देने वाले हैं।

'कुलार्णव तन्त्र' में लिखा है—

प्रवृत्ते भैरवी चक्रे सर्वे वर्णा द्विजातयः।
वृत्ते भैरवी चक्रे सर्वे वर्णा पृथक् पृथक्।

अर्थात्—भैरवी चक्र में प्रवेश होने पर सब वर्ण द्विजाति हैं। भैरवी चक्र से बाहर सब पृथक् पृथक् हैं।

'ज्ञानसंकलनी तन्त्र' में लिखा है—

"मातृयोनि परित्यज्य, विहरेत सर्वे योनिषु।
वेदशास्त्र पुराणानि, सामान्यगणिका इव॥"

"एकैव शाम्भवी मुद्रा गुप्ता कुल वधूरिव।
अहं भैरवस्त्वं भरवी ह्यावयोरन्तु संगमः॥

अर्थात—माता की योनि को छोड़कर सब योनियों में विहार करे, वेदशास्त्र मामूली वेश्या के समान हैं। सिर्फ अकेली शम्भु मुद्रा ही कुलवधू की तरह गुप्त है।

केवल इस ऊटपटांग वाक्य को बोलकर 'भैरवी-चक्र' में कोइ भी पुरुष किसी भी स्त्री से समागम कर सकता है। इस वाक्य का यह अर्थ होता है कि "मैं भैरव हूँ और तू भैरवी है, आओ हमारा तुम्हारा संगम हो।" साधारणतया जिन स्त्रियों को अपवित्र; स्पर्श माना है—उन रजस्वलाओं से भी व्यभिचार करने को इन तन्त्र ग्रन्थों में पवित्र माना गया है।

'रुद्रयामल तन्त्र' में लिखा है :—

"रजस्वला पुष्करं तीर्थं, चाण्डाली तु स्वयं काशी,
चर्मकारी प्रयागः स्यात् रजकी मथुरा मता।
अयोध्या पुक्कसी प्रोक्ता..............................

अर्थात—रजस्वला से सङ्गम करने से पुष्कर-स्नान-फल, चाण्डाली के समागम से काशी-यात्रा, चमारी के समागम से प्रयाग-स्नान धोबिन के समागम से मथुरा-यात्रा और कंजरी के साथ समागम करने से अयोध्या तीर्थ करने का फल मिलता है। ये लोग मद्य को 'तीर्थ' मांस को 'शुद्धि' और 'पुष्प' मछली को 'जलतुम्बिका' मुद्रा को 'चतुर्थी' और मैथुन को 'पंचमी' के नाम से पुकारते हैं। ये लोग अन्य धर्म वालों को आपस में 'कंटक, विमुख, भ्रष्टपथ' नाम से पुकारते हैं।

भैरवी चक्र में पहुँच कर ये लोग धरती या काठ के पटड़े पर कुछ सतिया जैसा पूर कर उस पर शराब का घड़ा रख कर पूजा करते हैं और "ब्रह्मशापं विमोचय" मन्त्र पढ़कर उसे पवित्र बनाते हैं—फिर एक भीतरी कोठरी में एक स्त्री और एक पुरुष को नङ्गा करके स्त्री का नाम देवी, पुरुष का नाम महादेव धरते हैं। उनके हाथ में तलवार देते हैं—फिर उनकी गुप्तेन्द्रिय की पूजा की जाती है। तदन्तर उन दोनों को एक-एक प्याला शराब दी जाती है—फिर उन्हीं के झूठे पात्रों में सब पीते हैं। फिर प्रधान आचार्य 'भैरवोऽहं, शिवोऽहं' कहकर एक पात्र पीता है—उनके बाद सब पीते हैं। इसके अनन्तर मांस, आदि एक बड़े बरतन में रख कर सब एक साथ खाते पीते हैं और शराब पीते रहते हैं। उसके बाद पंचमी चलती है। सब मतवाले होकर चाहे जिसकी बहन, कन्या, स्त्री, माता से व्यभिचार करते हैं। यहां तक कि स्वपुत्री का भी परहेज नहीं होता। कभी-कभी बहुत मतवाले होने पर मारपीट जूतम पैजार भी हो जाती है। किसी किसी को उल्टी हो जाती है—जो वमन को खा लेता है वह सिद्ध माना जाता है। लिखा है :—

'हलां पिबति दीक्षितस्य मन्दिरे सुप्तो निशायांगणिकागृहेषु।
....विराजते कौलव चक्रवर्ती ॥'

अर्थात्—जो कलाल के घर बोतल पर बोतल शराब गटक जाय और रात को वेश्या के घर जा सोवे, वह कौलव चक्रवर्ती है।

'ज्ञानसंकलनी तन्त्र' में लिखा है—

'पाश बद्धो भवेज्जीवः पाशमुक्तः सदाशिवः'।

इसका वे यह अर्थ करते हैं—कि लोकलाज, शास्त्रलाज, कुल-लाज और देशलाज की पाशों में बंधा है, वह जीव है। निरद्वन्द्व है, वह शदा शिव है। इन लोगों में दश महाविद्यायें प्रसिद्ध हैं। उनमें से एक 'मातङ्गी' विद्या है। उसका अभिप्राय है "मातरमपि न त्यजते"।

'गुप्त-साधन तन्त्र में लिखा है—

नटी कापालिका वेश्या रजकी नापितांगना।
ब्राह्मणी शूद्र कन्या च तथा गोपाल कन्यका॥
मालाकारस्य कन्या च नव कन्याः प्रकीर्तिता।

अर्थात्—नटनी, कपालिकी, वेश्या, धोबिन, नायन, ब्राह्मणी, शूद्र की लड़की, ग्वालिन की बेटी, मालिन की बेटी, ये नौ कन्याएँ साधना में काम आनी चाहियें।

इसके सिवा यह श्लोक भी है—

"स्वशक्त्या अयुत पुण्य परशक्तिप्रपूजने।"
"ततो वेश्याधिका ज्ञेया………………"

"शृणु देवी विशेषेण उत्तराम्नाय हेतवे' (ताराभक्तिसुधार्णव)।
"वेश्यागारेश्मशानेवा………………(पुरश्चरण चन्द्रिका)॥"

शङ्कराचार्य से पहले इस मत का भारत में बहुत जोर रहा था, और यह बात मैंने किसी प्रामाणिक लेख में पढ़ी थी कि पुरी का प्रसिद्ध जगन्नाथजी का मन्दिर पूर्व में भैरवीचक्र था। कृष्ण बलदेव के बीच में पत्नी या माता के स्थान में बहन सुभद्रा की स्थापना ब्राह्मण अंत्यजों का एक पंक्ति में भातभोजन, उच्छिष्ट का विचार न करना और मन्दिर पर के अश्लील-गंदे चित्र इस बात के प्रमाण हैं।

वल्लभ सम्प्रदाय, जिसे पुष्टि सम्प्रदाय भी कहते हैं, उसके आचार्य गोस्वामियों के व्यभिचार भी बुरी दृष्टि से नहीं देखे जाते। और यह बात तो स्पष्ट रूप से होती ही है कि शिष्य लोग अपनी प्रत्येक भोग-वस्तु गोस्वामी को समर्पण करते हैं। इस पद्धति का बहुत ही सभ्यतापूर्वक पालन किया जाता है। फिर भी इस सम्प्रदाय में धर्म व्यभिचार बहुत ही बदनाम हो गया है और लोग उसे अच्छी दृष्टि से नहीं देखते।

पुष्टि मार्ग के १० भाव प्रसिद्ध हैं। वे निम्न प्रकार हैं—

१—सब तरह केवल गुरु का आसरा पकड़ना।

२—श्रीकृष्ण की भक्ति से ही मुक्ति मिल सकती है।

३—लोकलाज तथा वेदशास्त्र की आज्ञा तज कर गुरु की शरण आना।

४—देव और गुरु के सामने नम्र रहना।

५—मैं पुरुष नहीं हूँ, किन्तु वृन्दावन की गोपी हूँ, ऐसा मन में समझना।

६—नित्य गुसाईं जी के गुण गाना।

७—गुसाईंजी के नाम का महत्व बढ़ाना।

८—गुरु की आज्ञा का पालन करना।

९—गुसाईं जो करे अथवा कहें उसी पर विश्वास रखना।

१०—वैष्णवों का समागम और सेवा करनी।

अब इस सम्प्रदाय की धार्मिक पुस्तकों के विचार और बातें सुनिये। 'सिद्धान्त रहस्य' में लिखा है—

"गुरु को तन, मन, धन अर्पण करना। ये वस्तु समर्पण करने से ब्रह्मरूप हो जाती हैं, और उन वस्तुओं के उपभोग से फिर ५ प्रकार का दोष नहीं लगता।"

'सद्सठ अपराध' नाम की पुस्तक में लिखा है—

१—वैष्णव होकर जो अवैष्णव का सन्मान करे, तो तीन जन्म तक चमार बने।

२—जो कोई गुरु और भगवान् में भेद रखे, वह पक्षी हो।

३—जो गुरु की आज्ञा का उल्लङ्घन करे, वह असि पात्र नर्क में जाय, और उसकी समस्त सेवा नष्ट हो।

४—जो अपने गुरु की गुप्त बात जाहिर करे, वह तीन जन्म तक कुत्ता हो।

'अष्टाक्षर टीका' में लिखा है- देखो, श्री गुसाईंजी कैसे हैं? उन्हें किसी वस्तु की इच्छा नहीं। उन्हें कुछ ग़र्ज़ नहीं। उनकी सर्व इच्छा पूर्ण हैं। वे सब गुणों से भरपूर हैं। वे स्वयं ईश्वर हैं। सब अवतारों में मुख्य हैं। करोड़ों कामदेवों के समान सुन्दर हैं। सद्‌गुणों से परिपूर्ण और रसिक-शिरोमणि हैं। भक्तों की मनोकामना पूर्ण करने वाले हैं। करोड़ों जगत् में उनकी कीर्ति व्याप्त है....ब्रह्मा, शिव इन्द्र उनकी स्तुति करते हैं।

'गुरु-सेव' पुस्तक में लिखा है—

"....इसलिए ईश्वर और गुरु की सेवा ज़रूर करनी चाहिए। जो मनुष्य ईश्वर की सेवा करे तो 'व्यापी' वैकुण्ठ में जाय—पर वही—जो गुरु की सेवा भी ईश्वर की तरह करे।....पराई वस्तु भोगने का दोष तो इस सृष्टि को लगता है। ईश्वर के लिए तो कुछ

पराया है ही नहीं। इसलिए व्यभिचार' का दोष ईश्वर ने सृष्टि को ही दिया है। अज्ञानी (?) कहते हैं—जो कोई पुत्री पिता से कहे कि मैं तुम्हारी स्त्री हूँ, इसमें अनीति है। इसलिए ईश्वर के साथ जार भाव की प्रीति रखने वाले अधर्मी हैं। इसमें यह बात सोचने योग्य है कि गोपियों ने श्रीकृष्ण के साथ जार भाव की प्रीति की थी। क्या उन्होंने अधर्माचरण किया? तथा सृष्टि के साथ सृष्टि की स्त्रियां पार्वती, सीता आदि को महादेव और रामचन्द्र जी ने ब्याहा (?). यह भी क्या अधर्म था? यह बात उन मूर्खों (?) के कहने से सिद्ध होगी। जो केवल पिता-पुत्र का भाव ही ईश्वर से हो तो श्रीकृष्ण इन कन्याओं को क्यों ब्याहते (?) पर ईश्वर में तो सब भाव हैं।....वह अपनी आत्मा (?) के साथ ही रमण करता है—उसे कुछ दोष नहीं। अज्ञानी (?) लोगों को शास्त्र विरुद्ध बात समझा कर लोग भ्रम में डालते हैं. जो जार भाव की प्रीति ईश्वर के साथ रखने में अधर्म होता हो तो पूर्ण पुरुषोत्तम वेद को जार भाव रखने (?) का वरदान है।

कुछ दिन पूर्व बम्बई में इस सम्प्रदाय के विरुद्ध बड़ा भारी आन्दोलन मचा था, और वहां के प्रमुख पत्रों में इस समुदाय के व्यभिचार की भारी निन्दा की गई थी, जिस पर वहाँ के बड़े मन्दिर के महन्त ने ५० हजार रु० का मान हानि का दावा वहाँ के कुछ पत्र वालों पर कर दिया था। इस मुकदमे की खूब धूम रही थी और गुसाईं जी की खूद छीछालेदर हुई थी। सन् १६१८ में हमने व्यभिचार नामक पुस्तक लिखी। उसमें हमने धार्मिक व्यभिचारों की उन सब बातों का उल्लेख किया था जिनका वर्णन इस

अध्याय में किया गया है—साथ ही उस मुकदमे की कार्यवाही के उस समय के पत्रों के उद्धरण भी दिये थे। इस पर बम्बई के मन्दिर के महंत ने प्रथम तो हमें मुकदमा चलाने की धमकी दी थी, पीछे उक्त पुस्तक का कापी राइट खरीद कर नष्ट कर देने की चेष्टा की थी।

कुछ दिन हुए स्वामी ब्लाकटानन्द ने—जो प्रथम इसी सम्प्रदाय के थे — इस सम्प्रदाय की पोल खोलते हुए नाटक लिखे थे, जो लगभग २८ वर्ष पूर्व हमने देखे थे। उसमें भी बहुत-सी बातों का भण्डा-फोड़ किया गया था।

नाथद्वारा इस सम्प्रदाय का बड़ा भारी अड्डा है और इसकी सम्पत्ति भी करोड़ों रुपये की है। हाल ही में वहाँ के भावी अधिकारी महन्त दामोदरलाल ने एक वेश्या से विवाह करके देश में काफी हलचल मचा दी थी। महन्त दामोदरलाल ने इस कुकर्म को धर्मक्रान्ति के विचार से किया हुआ प्रमाणित करने की चेष्टा की थी—पर हमने स्वयं नाथद्वारे जाकर उनके भयानक व्यभिचारों की अनगिनत कहानियाँ और उनके कुत्सित जीवन की घृणास्पद बातें सब स्वयं सुनीं, और जब उनसे कहा कि आप इन आरोपों का क्या उत्तर देते हैं, तो उन्होंने निर्लज्जतापूर्वक कहा — इसमें हमारा क्या दोष है, यह तो हमारे सम्प्रदाय में होता ही है। आप सम्प्रदाय में संशोधन कीजिये, तब यह बुराइयाँ दूर होंगी।

पुराणों में देवता और ऋषियों के व्यभिचारों को पवित्र और निर्दोष रूप दिया गया है। विष्णु ने वृन्दा के साथ उसके पति का रूप धर कर व्यभिचार किया। इन्द्र ने चन्द्रमा की सहायता से

गौतम की पत्नी अहल्याके साथ व्यभिचार किया। अनेक देवताओं ने कुमारी अवस्था में कुन्ती से व्यभिचार किया। इसी प्रकार विश्वामित्र ने मेनका से, पाराशर ने सत्यवती से, यहाँ तक कि पशुओं तक से व्यभिचार करने के घृणास्पद उदाहरण हमें देखने को मिलते हैं। श्रीकृष्ण को एक आदर्श व्यभिचारी के रूप में हिन्दुओं ने उपस्थित किया है। इन सब बातों से हिंदू समाज की भावना इस क़दर गन्दी हो गई है कि कोई कवि, लेखक या नाट्यकार, चाहे भी जितनी अश्लील रचना करे, या चेष्टा करे, यदि उसमें राधा या कृष्ण का नाम आ जाता है तो वह प्रायः क्षमा के क़ाबिल मानी जाती है, और निर्दोष तो वह है ही।

कैसी शर्म की बात है कि मनुष्य अपनी पाप-वृत्तियों और कुत्सित भावनाओं को धर्म की आड़ लेकर पूरी करने में अपना बड़ा भारी कौशल समझता है। कभी किसी ने यह नहीं विचार किया कि राधा वास्तव में श्रीकृष्ण की पत्नी न थी, वह पर-स्त्री थी। इसके सिवा श्रीकृष्ण के अपनी पत्नियां भी थीं। महाभारत में हमें इसका कुछ भी उदाहरण नहीं मिलता। परन्तु हिन्दुओं की मनोवृत्तियां इतनी गंदी हो गई हैं कि वे कृष्ण के व्यभिचार की लीलाएँ बड़ी भक्ति और श्रद्धा के साथ सुनते हैं।

पशुओं से स्त्रियों को मैथुन करने की आज्ञा भी एक अद्भुत और भयानक धर्म की आज्ञा है। अश्वमेध यज्ञ में यजमान की स्त्री को घोड़े से मैथुन कराना पड़ता था। कहा जाता है कि एक राजा की रानी इस भयानक कर्म के करने से मर गई थी। बहुधा साधू-महात्माओं को इस प्रकार के कुकर्म करते देखा जाता है।

कुछ दिन पूर्व कलकत्ते के गोविन्द भवन नामक मारवाड़ियों के एक भक्ति-आश्रम के एक पहुँचे हुए भक्त हीरालाल के पाप का घड़ा बीच बाज़ार फूटा था, और यह प्रमाणित हो गया था कि इस नराधम ने सैकड़ों ही भले घर की बहू-बेटियों से उस मन्दिर में व्यभिचार किया है। यह उस जाति की बेग़ैरती का नमूना था कि उस भयानक अपमान को वे लोग चुपचाप पी गए। पर इस व्यभिचार की जड़ में वह कुत्सित भावना है जो धर्म-व्यभिचार सम्बन्धी साहित्य के मनन से स्त्री-पुरुषों के मन पर होती है। यह व्यक्ति अपने को कृष्ण और स्त्रियों को गोपी कह कर उनकी वृत्तियों को अवसर पाते ही चलित करता था...... और फिर उन्हें पतित करता था। स्त्रियाँ स्वभाव ही से चलित चित्त तो होती ही हैं, शीघ्र ही बहक जातीं। फिर इस पापिष्ठ ने कुटनियाँ भी बहुत सी लगा रखी थीं। जब 'चाँद' के 'मारवाड़ी अङ्क' का हमने सम्पादन किया तो इस धर्म साँड के चित्र को प्राप्त करने में हमें बड़ी दिक़्क़त का सामना करना पड़ा। अन्त में एक उच्च कुल की महिला के गले में पड़े हुए लाकेट से वह चित्र हमें बड़ी कठिनाई से मिला, और उस महिला ने उसका नाम न प्रकाशित करने को हमें शपथ-बद्ध किया। यदि पाठक आज्ञा दें तो मैं यह कहना चाहता हूँ कि यह पतित आदमी अब भी ब्रह्मनिष्ठ समझा जाता है। और अब भी कुछ स्त्रियों की उसके प्रति कृष्ण भावना और जार सम्बन्ध है, यह मारवाड़ी समाज की पतित नैतिक स्थिति के कारण ही है।

प्रायः ब्राह्मण लोग पूजा-पाठ का ढोंग करने नित्य ही सद्-गृहस्थों में जाते रहते हैं—ख़ास कर मारवाड़ी परिवारों में। स्त्रियाँ इनसे पर्दा भी नहीं करतीं। ये लोग खूब चुस्त, चालाक चंट और लुच्चे होते हैं। हस हंसकर स्त्रियों से बातें करते, उनका हाथ देखते, भविष्य बताते और इस बहाने उनके गुप्त भावों को जान अपना उल्लू साधते हैं। ऐसे जनेऊधारी अनेक साँडों को हम जानते हैं। पीछे वही पाजी इस काम की दलाली भी करने लगते हैं और दूसरों के सन्देश और संकेत पहुँचाया करते हैं।

मन्दिर व्यभिचार प्रवृत्ति के बड़े भारी केन्द्र हैं। कुछ दिन पूर्व दिल्ली के एक मन्दिर का रहस्योद्घाटन हुआ था। मन्दिर में प्रवेश करने के द्वार के पास एक स्थान नियत है जहाँ जाने वालों के जूते उतार कर रख लिये जाते हैं। इस काम पर स्वेच्छा से एक युवक ने अपने आपको पेश किया। वह प्रत्येक आगन्तुक के जूते ले कर रखता, और चलती बार दे देता था। बहुत सी युवतियाँ भी मन्दिर में आती थीं। जब से असहयोग आन्दोलन चला और पंजाबी-संस्कृति दिल्ली में मिली, दिल्ली में निर्भय विचरनेवाली युवतियों की काफ़ी भीड़ होगई है। सायंकाल को चांदनी चौक में जिसका जी चाहे आकर देख ले, प्रायः युवतियाँ बेधड़क ख़ोमचे वाले की दुकानों के सामने स्टूलों पर बैठकर पत्ते चाटा करती हैं। या 'हर माल साढ़े तीन आने' की दुकानों पर घन्टों खड़ी सौदा पटाया करती हैं। इनमें बहुत सी उच्च-कुल की लड़कियाँ होती हैं। अस्तु! यह युवक यह चालाकी करता कि जिस युवती को यह पसन्द करता उसके जूते में ५) का नोट रख देता। जब

वह स्वीकार हो जाता तो सौदा पट जाता—नहीं तो अकस्मात की बात कह दी जाती।

एक महापुरुष अपना नया तजुर्बा सुनाने लगे—कि मैं तो यमुना जी के रास्ते पर जहाँ बग़ीची है जा डटता हूँ। वहीं से नित्य ही हज़ारों स्त्रियां गुज़रती हैं। जिसे पसन्द किया, ५) का नोट गिरा दिया, यदि उसने उठा कर चुपचाप रख लिया तो संकेत करके ज़रा अलग किया और सब बातें तै करलीं—नहीं तो अपना नोट उठाया और दूसरा शिकार देखा।

मन्दिरों से स्त्रियों का उड़ाया जाना, उस पर बलात्कार करना नई बात नहीं, नित्य के काम हैं। और इनके मूल में भी वही धर्म व्यभिचार की छाप है, जो ऐसे कर्मों की ओर विचार करने को मनुष्य को खींचता है।

(७)
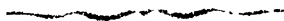
अपराध

हत्या, व्यभिचार और दूसरे कार्य, जिनका ज़िक्र हमने पिछले अध्यायों में किया है, अपराध ही हैं। परन्तु इस अध्याय में हम इससे भिन्न अपराधों की चर्चा किया चाहते हैं, जो कि 'धर्म के नाम पर' प्रायः होते रहते हैं।

इनमें सबसे प्रथम हम घरों में आग लगाने की बात कहेंगे। प्रायः ज्योतिषी और स्याने नामधारी भण्ड पाखण्डी लोग स्त्रियों को फुसला कर यह अपराध कराते हैं। स्त्रियों को सन्तान न होने पर बड़ी चिन्ता होजाती है और प्रायः देखा गया है कि इसके लिए वे उचित-अनुचित सभी उपायों को काम में लाती रहती हैं। इस प्रकार के अपराधों की भित्ति भी धार्मिक अन्धविश्वास ही है। ज़िला मुज़फ़्फ़रनगर और सहारनपुर के इलाकों में प्रायः स्याने लोग यही नुस्खा बताया करते हैं और बहुधा इन ज़िलों के देहातों में ऐसे काण्ड हुआ करते हैं।

सहारनपुर के ज़िले के एक गाँव में एक स्त्री के बच्चा नहीं होता था। स्त्री अग्रवाल वैश्य जाति की थी और सम्पन्न घर की थी। उसने स्याने को बुलाया। उसने हिसाब-किताब देख-भाल कर कहा कि किसी के छप्पर में आग लगादो तो देवता प्रसन्न होकर पुत्र

प्रदान कर देंगे। उसने एक दिन अवसर पाकर दुपहरी में एक ग़रीब के झोंपड़े में आग लगा दी जिसने आधा गांव भस्म कर दिया। कई पशु और आदमी भी जल गये।

कुछ दिन पूर्व बुलन्दशहर के कोर्ट में एक नीच जाति की स्त्री ऐसे ही अपराध में गिरफ्तार की गई थी। उसने एक स्याने के कहने से छः घरों में निरन्तर आग लगाई, अन्त में पकड़ी गई और उसे दण्ड दिया गया।

इसी प्रकार आग लगाने की घटना अनूपशहर के पास हमने स्वयं देखी थी, जिससे सारा गांव भस्म हो गया था। उसमें ५ गायें, २ बैल, ६ पशुओं के बच्चे, २ स्त्रियां तथा एक बालक जल मरा था। अन्य नुक़सान की गणना पृथक्।

बच्चों की चुपचाप हत्यायें भी प्रायः ऐसे मामलों में होती रहती हैं।

जिला मुजफ्फरनगर के एक कस्बे में कुछ दिन पूर्व एक रोमाञ्चकारी घटना हो गई थी। वहां के एक सम्पन्न प्रतिष्ठित जैन परिवार में सन्तान नहीं होती थी। किसी स्याने ने स्त्री को बहका दिया कि यदि वह छः खूनों में स्नान करे तो उसे पुत्र अवश्य होगा। वह स्त्री उसका पति और श्वसुर आदि पूरा कुटुम्ब इस भयानक कार्य के लिये तैयार हो गया। उसका एक नौकर कम्बो जाति का था। उसका छः वर्ष का एक पुत्र था। वह पांच सौ रुपये लेकर अपने पुत्र को स्वयं मारने को तैयार हो गया। नियत समय पर घर के सब व्यक्ति एकत्रित हुए। लड़के के ज़ालिम बाप ने साग काटने की दरांत से उसकी गर्दन काटना शुरू किया और उसका

खून निकाला गया। इसके बाद वह पिचाश उसकी लाश को जङ्गल में दफना आया। परन्तु इस भयानक काम से उसे जाड़ा-बुखार जैसा चढ़ आया और वह थर-थर कांपता बालक को दफना कर एक डाक्टर साहब के पास गया और दवा मांगी। डाक्टर ने उसकी चेष्टाओं से सन्देह किया कि इसने कोई काण्ड किया है। उसने प्रथम तो कहा कि मेरा लड़का मर गया, फिर सब बातें बयान कर दीं। पुलिस में खबर की गई और लड़के का बाप, स्त्री उसका पति आदि कई आदमियों का चालान हुआ। स्याने को भी पुलिस ने पकड़ा था, पर उसे इधर-उधर के लोग सिफारिश करके छुड़ा लाये और वह नीच इस केस से बिल्कुल ही बच गया। सेशन में केस चला। अपील में सब छूट गये, सिर्फ उस बालक के पिशाच पिता को काला पानी हुआ।

जिला मेरठ में एक स्त्री अदालत में इस अपराध में लाई गई थी कि उसने ३ साल की बच्ची को जिन्दा गाड़ दिया था। उसे ज्योतिषी ने यह बताया था कि ऐसा करने से उसके बच्चे जो हो-हो कर मर जाते थे, अब न मरेंगे।

दो-तीन साल पूर्व दिल्ली में सब्जी मण्डी में एक वैश्य व्यापारी ने दूसरी शादी की थी। परन्तु दो-तीन वर्ष बीतने पर भी उसके सन्तान नहीं हुई थी। उसे किसी मुसलमान स्याने ने बता दिया कि किसी बच्चे के खून से स्नान करले तो बच्चा हो जायगा। उसने अपनी जिठानी के लड़के को मार डाला और घर में ही उसे गाड़ दिया, पीछे बात खुल गई और मामला पुलिस में गया। स्त्री को सजा मिली।

सिकन्दराबाद में एक जैन स्त्री के बच्चे हो-होकर मर जाया करते थे। किसी स्याने ने कहा—तुझे मसान लग गया है। इस बार बच्चा होजाय तो उसे जमीन में गाड़ देना, फिर सब बच्चे जिन्दा रहेंगे। उसने पैदा होते ही अपना बच्चा जमीन में गाड़ दिया। दैवयोग से उसी समय एक कुम्हार वहां मिट्टी खोदने गया और बच्चा बरामद किया। मामला अदालत में गया और बड़ी दौड़-धूप के बाद स्त्री रिहा कराई गई।

अनूपशहर में एक स्त्री के सन्तान नहीं होती थी। किसी स्याने ने कहा कि किसी आदमी का खून चाट ले। उसने किसी पड़ौसी के बच्चे का हाथ काट खाया और खून पी गई। बहुत लोग इकट्ठे हुए, मगर मामला रफा-दफा हो गया।

कुछ पेशेवर ठग आम तौर से साधुओं का वेष धरे घूमा करते हैं, जो धर्म के नाम पर बड़ी बड़ी कार्रवाइयां कर गुजरते हैं।

एक कस्बे में एक सर्राफ़ के पास दो साधू आए। सर्राफ साधुओं का बड़ा भक्त था। साधुओं की उसने खूब सेवा-सुश्रूषा की। साधुओं ने कहा—बच्चा हम तुम पर महाप्रसन्न हैं। तू जितना हो सके सोना लेआ। हम उसे दूना बना देंगे। सर्राफ़ ने कहा—महाराज, पहले चमत्कार दिखाइये। उन्होंने एक तोला सोना लेकर आग में रख दिया। उसीमें एक तोला तांबा रख दिया। सर्राफ तो उनकी सेवा-चाकरी में लगा और साधुओं ने तांबे के स्थान पर चुपके से सफाई के साथ एक तोला सोना रख दिया। जब गल जाने पर निकाला तो दो तोला सोना था। लाला जी लोटन-कबूतर होगये और तुरन्त साठ तोले सोना साधुओं के सामने ला

धरा। साधुओं ने बराबर तांबा मिला उसे आग में रख दिया और सफाई से सोना निकाल लिया। इसके बाद निश्चिंताई से लाला से कहा—बच्चा, सुलफा और रबड़ी हमारे वास्ते लाओ। लाला इस काम में लगे और साधु चुपचाप चम्पत हुए।

एक साधु महाराज हाथ से धातु नहीं छूते थे, परन्तु सोना बना दिया करते थे। उनके पास कोई भस्म थी। उसे चुटकी भर कर तांबे पे डाला और तांबा सोना बना। एक बार एक सेठ जी चक्कर में आ गये। महीनों सेवा की और अन्त में साधु को प्रसन्न किया। उन्होंने वचन दिया—हम तुझे सोना बना देंगे। उन्होंने उसकी स्त्री के गहने मंगवा लिये और अवसर पा चलते बने। अन्त में पकड़े गये।

एक साधु ने एक हलवाई भक्त से एक चिलम तम्बाकू मांग कर उसी के सामने भर कर पिया। कुछ देर बैठ चिलम वहीं उलट कर चल दिये। हलवाई ने देखा—राख में सोना चमचमा रहा है। दौड़े और दण्डवत प्रणाम कर बाबा को ढूंढ लाये। महीनों सेवा की—टाल-टूल करते रहे, अन्त में लाला का २००) रुपये का माल हथिया कर चम्पत हुए।

कुछ दिन पूर्व दिल्ली में एक भारी मामला होगया था। एक प्रसिद्ध वैद्यराज के पड़ौस में एक धनी लाला जी रहते थे। उनकी सुन्दरी स्त्री पर इनकी दृष्टि थी। वैद्यजी की स्त्री कुटनी का काम करती थी। वह दूसरी स्त्रियों को फंसा-फंसा कर उनके पास ले आती थी। इस स्त्री को भी इसने फांसा। अतः वैद्यजी और इस स्त्री ने मिल कर सेठ जी को ठगने का षड्यन्त्र रचा। सेठ जी

बीमार रहते थे। एक बार उन्हें देखने को वैद्यजी बुलाये गये। एक आदमी पहिले ही से ठीक कर लिया गया था—वह थोड़ी ही देर बाद वहां पहुँच गया। वैद्य जी ने अनजान की तरह पूछा—"तुम कौन हो; और क्या चाहते हो?" उसने कहा—"महाराज, मैं बड़ा दुखी था—मेरा रोग किसी भांति आराम ही न होता था। अंत में मैंने आत्मघात करने की सोची—और एक दिन बहुत सवेरे उठ कर मैं लालकिले की फ़सील पर चढ़ गया, और चाहा कि कूद कर जान दे दूँ, कि भैरोंजी प्रकट हुए और कहा—ठहर जान मत दे, यह औषधि ले, इसमें से आधी खा, आराम हो जायगा। मैंने वह आधी दवाई खाई और खाते ही अच्छा हो गया।"

वैद्यजी ने चमत्कृत होकर कहा—"वह आधी दवा कहाँ है?" तब उसने वह दवा वैद्य जी को दे दी—उन्होंने वह गिरा दी। इस पर उसने बिगड़ कर कहा—"वाह, यह आपने क्या किया? दवा गिरा दी।" तब वैद्यजी ने कहा—"चिंता न करो—चलो—फिर भैरोंजी का आवाहन करें और औषधि प्राप्त करें।"

यह कह कर दोनों गये। लालाजी बड़े प्रभावित हुए। उनकी कुल्टा स्त्री ने उन पर और भी रङ्ग चढ़ा दिया था। दूसरे दिन जब वैद्यजी फिर गये तो लाला ने बड़े उत्सुक होकर पूछा—"कहो—कल क्या देखा?"

उन्होंने कहा—"भैरों ने साक्षात् दर्शन दिये। इस आदमी पर भैरों बाबा प्रसन्न हैं, और यह जिसे चाहे दर्शन करा सकता है।"

लाला ने कहा—"तब हमारा भी सङ्कट काटना चाहिए।" ग़रज़ उन दोनों पाखण्डियों ने लाला को उल्लू बना कर उससे

१०-१२ हजार रुपया झाँसा। उनकी पत्नी इस काम में उनकी सहायक हुई। कई बार उन्होंने भैरों के दर्शन लाला को भी कराए। कुछ दिन व्यतीत होने पर जब लाला का रोग दूर न हुआ— उल्टा बढ़ता ही गया तो उन्होंने घबराकर कहा—"अब क्या करना होगा ?" वैद्यजी ने अनुष्ठान के लिये ५०० रुपये और मांगे।

लाला के कोई सम्बन्धी आर्यसमाजी थे। उन्हें इस बात की कुछ सीध लग गई कि ये धूर्त लाला को ठग रहे हैं। उन्होंने पुलिस में इसकी इत्तला की। पुलिस ने ५०० रुपये के नोटों पर निशान करके उन्हें दिये कि जाकर वैद्यजी को दे दो। उन्होंने वैद्यजी को लाला के घर बुलाया और लाला को जल्द अच्छा करने का वचन लेकर वे नोट उन्हें दे दिये। वैद्यजी उन्हें जेब में डाल ज्यों-ही बाहर निकले कि पुलिस ने उन्हें धर लिया। मुकदमा चलो, और वैद्य जी दिल्ली छोड़ ऐसे ग़ायब हुए कि जैसे गधे के सिर से सींग। पुलिस कई दिनों तक उनका वारण्ट लिए फिरती रही।

बम्बई में एक सम्पन्न मारवाड़ी व्यक्ति एक स्त्री को मेरे पास लाया और कहा कि यह मेरी साली है। इसे बायगोले की बीमारी है। उस स्त्री ने बहुत कहने-सुनने पर भी पेट नहीं देखने दिया, केवल नाड़ी देख कर ही दवा देने का अनुरोध करती रही। लाचार उसका बयान सुनकर ही औषधि व्यवस्था करदी गई। कुछ दिन तक वह नित्य आता रहा और तेज दवा देने का अनुरोध करता गया। फिर वह एकाएक नहीं आया। दो-तीन दिन बाद हमें मालूम हुआ कि वह पकड़ा गया है। उसकी साली को गर्भ था। बच्चा पैदा होने पर उसके सिर में कील ठोक कर उसे घड़े में रख कर

गटर (मोरी) में डाल दिया। भंगी ने देखकर पुलिस में इत्तला की। पुलिस को देखते ही वे लोग घर से नासिक भाग गये। मार्ग में स्त्री को सन्निपात होगया और वह पुलिस के सामने बयान देकर मर गई। वह व्यक्ति फ़ौजदारी के सुपुर्द हुआ।

एक साधु एक सद्-गृहस्थ के यहां आता-जाता था। घर के लोग उसकी बहुत आवभगत करते थे। घर में एक जवान क्वाँरी लड़की थी। एक जवान आवारागर्द उसका भाई था। इस भाई को सोना बनाने की विधि सिखाने का उसने झांसा दिया और इसे इस बात पर राज़ी कर लिया कि उस पापी के पास अपनी बहन को फुसला कर ले आये। लड़के ने ऐसा ही किया। पीछे जब लड़की के व्याह की चर्चा उठी तो साधु ने कहा—यह लड़की हमारे साथ बिगड़ चुकी है, इसका व्याह नहीं हो सकता। लोग बदनामी के डर से बहुत डरे, अन्त में भाई की सहायता से वह उसे लेकर भाग गया और फिर पकड़ा गया।

यहां हम विस्तार भय से अधिक न लिख कर इस विषय को समाप्त करते हैं।

(८)
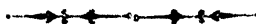
कुरीति और रूढ़ियां

(गुलाम और नामर्द क़ौमें हमेशा कुरीतियों और रूढ़ियों की दास हुआ करती हैं। हिन्दू जाति में भी इन दोनों चीज़ों की कमी नहीं। ये दोनों ही बातें अन्य जङ्गली और पतित जातियों के समान हिन्दुओं में धर्म-विश्वास पर ही निर्भर हैं।

प्रत्येक जाति के जीवन का आधार प्रगतिशीलता है। जिसमें प्रगतिशीलता नहीं—वह जाति ज़िन्दा नहीं रह सकती। हिन्दू जाति की प्रगति कब की नष्ट होगई है। अब यह जाति केवल मौत की सांस ले रही है। सनातन धर्म हमारी आत्मा में रम गया है और हम उसी गढ़े का सड़ा हुआ ज़हरीला पानी पी-पीकर मर रहे हैं, जिसमें नये जल के आने का कोई सुभीता ही नहीं है। यह सनातन धर्म २००० वर्ष से पुराना नहीं। पुराना होने पर भी मान्य नहीं। मैं इस सिद्धान्त को भी मानने से इन्कार करता हूँ कि जो कुछ पुराना है वह सब शुभ और माननीय है। मेरा कहना यह है कि जो कुछ हमारे लिए बुद्धिगम्य और शुभ है, वही हमारे लिए माननीय है। और धर्म तथा जातियाँ तो वही ज़िन्दा रह सकती हैं—जो समय के अनुकूल अपनी प्रगति को तत्कालीन बनाये रक्खें।)

हमारी सब से भयानक कुरीति विवाह-पद्धति है। इस प्रथा की आड़ में अनगिनत पाप, पाखण्ड, अपराध और अन्याय धर्म के नाम पर किये जा रहे हैं।

विवाह का मूल उद्देश्य स्त्री-पुरुष का परस्पर आत्म-भावना का नैसर्गिक विनिमय है, जिसके आधार पर प्रकृति का प्रवाह चल सकता है। स्वभाव ही से स्त्री-पुरुष दोनों के मिलने पर एक सत्व बनता है। अतः समय पर उपयुक्त स्त्री-पुरुषों का परस्पर सहयुक्त होना आवश्यक है।

परन्तु यह सहयोग वैज्ञानिक भित्ती पर है। इसका सब से मोटा उदाहरण तो यही है कि सपिण्ड और सगोत्र स्त्री-पुरुष संयुक्त नहीं हो सकते। यह बहुत गम्भीर और वैज्ञानिक बात है कि भिन्न रक्त और वंश को मिलाकर सन्तानें उत्पन्न की जायें। परन्तु वह विज्ञान तो प्रायः नष्ट कर दिया गया है।

विवाह की प्रथा में सबसे ज़्यादा बेहूदा और अधर्म की परिपाटी 'कन्यादान' की परिपाटी है। पिता कन्या को वर के लिए दान देता है। हिन्दू विवाह में यह सर्वाधिक प्रधान बात है। मैं यह कहता हूँ कि कन्या अपने पिता की मेज़ कुर्सी या क़लम-दवात नहीं, उसकी ख़रीदी हुई सम्पत्ति भी नहीं; मकान, दुकान या जायदाद भी नहीं, सोना-चाँदी या अन्न भी नहीं—फिर उसे कन्या का दान करने का किसने अधिकार दिया, क्या कन्या के कोई आत्मा नहीं? वह जीवित नहीं? उसे अपनी लाभ हानि पर, जीवन की समस्या पर विचार करने का ज़रा भी अधिकार नहीं? शोक तो यह है कि आर्यसमाज की पुत्रियां भी विवाह के अवसरों पर

पिताओं द्वारा दान की जाती हैं। आर्यसमाज अपने को वैदिक-धर्मी होने की तो हाँकता है पर मैं डंके की चोट उसे चैलेंज देता हूँ कि वह साबित करे कि कन्यादान का विधान कौनसे वेद मंत्र में है? वेद में तो साफ़ ये शब्द मिलते हैं कि—

'ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्'

सनातन धर्मियों के विवाह की अपेक्षा मुझे आर्यसमाज के विवाह ज्यादा भ्रष्ट और बेहूदे प्रतीत होते हैं और मैं उन्हें कदापि सहन नहीं कर सकता। सनातन धर्म की कन्यायें—बालक, अभागिनी, अबोध, मूर्खा और पिता की सम्पत्ति होती हैं। पिता वर का स्वागत करता है, आसन देता है, गोदान करता है, मधुपर्क देता है, पाद्य और आचमनीय देता है, तब कन्या को भी दे देता है। इसके बाद वर-वधू सप्तपाद आदि भी करते हैं। इन सब बातों में जैसा भी पातक या अनीति हो, वह क्रमबद्ध तो है पर आर्यसमाज की पुत्रियां युवती हैं, पढ़ी लिखी हैं। विवाह के प्रश्नों पर उन्हें विचार करने का अवसर दिया जाता है। बहुधा कन्या को भावी वर से बोलने और पसन्द करने का अवसर भी दिया जाता है। विवाह की वेदी पर स्वयं कन्या वर का स्वागत करती और अर्घ्य-पाद्य आदि देती हैं। इसके बाद पिता कन्या-दान देता है। और तब प्रतिज्ञायें या सप्तपदी की क्रियायें की जाती हैं। अजी जनाब! मैं यह पूछता हूँ, जब कन्या, दान ही करदी तब प्रतिज्ञाओं का क्या महत्व है? यदि वर-वधू प्रतिज्ञाओं से इनकार करदें तो क्या कन्या का कन्यादान वापस हो सकता है? आर्यसमाज के पंडितगण वेदमन्त्रों की व्याख्या करके वर-वधू को प्रतिज्ञाओं के

अर्थ समझाने की चेष्टा करते हैं। सनातनधर्मी तो एक रस्म पूरी करके छुट्टी लेते हैं। इसीलिए मैं कहता हूँ कि आर्यसमाज की विवाह-पद्धति ज्यादा आपत्ति-जनक है।

यदि मैं यह कहूँ कि मनुस्मृति, जो वास्तव में मनु की बनाई नहीं है—इस भयानक अनर्थ की जड़ है, जो बेजान साधारणतया यह कहा जाता है कि स्मृतियाँ वेद के अनुकूल चलती हैं, पर विवाह के मामलों में इस स्मृति ने वेद के नियमों के विरुद्ध ही नियम बनाए हैं। यह स्मृति ८ प्रकार के विवाहों को बयान करती है। प्रथम विवाह आर्ष है जिसमें कन्या का पिता अलंकृता कन्या को श्रेष्ठ वर को दान करता है। दूसरा विवाह ब्राह्म है जिसमें पिता एक बैल का जोड़ा लेकर वर को कन्या देता है। तीसरा विवाह दैव है जिसमें पुरोहित को दक्षिणा के तौर पर कन्या दे दी जाती है। चौथा गन्धर्व है जिसमें वर कन्या चुपचाप पति-पत्नी भाव से रहने लगते हैं। एक विवाह राक्षस है जिसमें रोती-कलपती बालिका का बलपूर्वक हरण करके जबर्दस्ती ले जाया जाता है।

इन नियमों में ग़ौर करने की बात यह है कि कन्या को अपना वर स्वयं चुनने का गन्धर्व विवाह को छोड़कर कहीं भी अधिकार नहीं दिया गया। गन्धर्व विवाह की बात हम पीछे करेंगे। प्रथम तो हम दैव विवाह पर ग़ौर किया चाहते हैं कि एक आदमी जो यज्ञ कराने आया है, उसे बहुत-सी दान-दक्षिणा की चीजें दी जाती हैं, उसमें कन्या भी दी जा सकती है। यह केवल नियम ही नहीं, हम ऐसे उदाहरण दे सकते हैं, जिसमें राजाओं ने अपनी सुकुमारी राज-पुत्रियां पुरोहितों को दे डाली हैं।

अच्छा, राक्षस विवाह को किस आधार पर विवाह माना जाता है ? जबर्दस्ती, रोती, कलपती कन्या को बलपूर्वक हरण करके ले जाना अपराध है कि ब्याह ? भीष्म जैसे ज्ञानी और महावीर ने भी यह अपराध किया था, वह काशीराज की तीन कुमारियों को जबर्दस्ती युद्ध करके छीन लाये थे। न कन्या का पिता और न कन्या ही इसके अनुकूल थीं। मैं जानना चाहताहूँ कि यदि भीष्म को ताजीरात हिन्द की दफ़ा ३६६ के अनुसार मजिष्ट्रेट के सामने अभियुक्त बनाकर खड़ा किया जाय तो वे चाहे भी इस कर्म को धर्म की दुहाई दें, वे सात वर्ष की सख़्त सजा पाये बिना नहीं रह सकते। और कोई भी आदमी न नैतिक दृष्टि से और न सामाजिक दृष्टि से किसी कन्या को इस प्रकार हरण कर सकता है, फिर यह कुकर्म विवाह तो हो ही नहीं सकता।

गान्धर्व विवाह का हमें प्राचीन इतिहास में एक ही उदाहरण मिलता है, शकुन्तला और दुष्यन्त का। यह गान्धर्व विवाह कितना बेहूदा और नीच कर्म था—इसका ज्ञान हमें इसी विवाह से मिल जाता है। हमें कालिदास की रसीली कवित्वमयी लच्छेदार बातों से कुछ सरोकार नहीं, हम तो असली कथा पर ही ग़ौर किया चाहते हैं।

दुष्यन्त जैसा श्रेष्ठ चक्रवर्ती राजा शिकार को जाता है। वहां कण्व के आश्रम में पहुँचता है। कण्व वहां नहीं हैं, उनकी पोष्य-पुत्री शकुन्तला है। वह उस युग के धर्म के अनुसार राजा का आतिथ्य करती है। राजा इस सुयोग से लाभ उठाकर बेचारी कुमारी बालिका को फुसलाकर वहीं उसका कौमार्य नष्ट करके

और बहुत से सब्ज़-बाग़ दिखाकर घर चल देता है। जब ऋषि आते हैं और उन्हें सब बातें मालूम होती हैं, तो वे यही निर्णय देते हैं कि इसे उसके यहां पहुँचा आओ, और जब वह वहां जाती है तो दुष्यन्त साधारण लम्पट की भांति निर्लज्जता से कह देता है कि यह कौन है, इसे मैं जानता भी नहीं। अन्त में वह अपनी माता के पास जाकर दिन काटती है जिसे उसी की भांति एक ऋषि भ्रष्ट कर चुका था, और जिसका फल वह खुद थी। बहुत दिन बाद, राजा को वृद्ध होने पर भी जब पुत्र नहीं होता तब वह खुशामद कर-कराकर ले आता है।

यह असल कथा है। मेहमान का इससे ज्यादा नीच कर्म कौनसा हो सकता है कि वह जिसके घर में अतिथि बने उसी की कुमारी कन्या को उसकी अनुपस्थिति में कुछ ही घण्टे में बहका-कर न केवल उसे विवाह पर राजी करे, प्रत्युत तुरन्त ही उसका कौमार्य भी नष्ट कर दे, और फिर उसके पहिचानने से भी इनकार कर दे।

द्रौपदी, सीता और दमयंती आदि के स्वयंवरों की चर्चा भी हमें प्राचीन पुस्तकों में मिलती हैं। परन्तु वे नाम-मात्र के स्वयंवर थे। सभी में पिता की एक शर्त थी, उसे पालन करके कोई भी उस कन्या को प्राप्त कर सकता था। यदि रावण और बाणासुर जनक के धनुष को तोड़ पाते तो वे अवश्य ही सीता को प्राप्त करने के अधिकारी हो सकते थे—चाहे सीता उन्हें चाहती या नहीं।

स्त्रियों की बिना रुचि जाने, उनको अपने जीवन पर विचार करने का अवसर दिये बिना, पुरुषों की स्वेच्छा से उनका विवाह

कर देना यह स्त्री जाति-मात्र का घोर अपमान है, और इस कुकर्म ने हिन्दू जाति की स्त्रियों के सब सामाजिक अधिकार छीन लिये। उन्हें निरीह पशु के समान बना दिया। इसी कन्यादान की प्रथा के कारण पति की सम्पत्ति में उनका कुछ भी अधिकार नहीं। विधवा होने पर वे केवल रोटी-कपड़ा पा सकती हैं, मानों वे घर की कोई बूढ़ी निकम्मी गाय-भैंस हैं। संसार के किसी भी सभ्य देश की स्त्री विवाह होने पर हिन्दू स्त्री की भांति बेबस नहीं हो जाती। इसका कारण यही है कि वह दान की हुई वस्तु है, और उसके प्राण, आत्मा और शरीर पर उसके पति का पूर्णाधिकार है।

बाल-विवाह इस कुकर्म का दूसरा स्वरूप है। आज ढाई-करोड़ विधवायें इस कुकर्म के फल स्वरूप हिन्दुओं की छाती पर बैठी ठण्डी सांसें ले रही हैं, कोई ज़हर खाकर दुःख से छुटकारा पाती हैं, कोई भंगी, कहार, मुसलमान के साथ भागकर खानदान का नाम रौशन करती हैं !!

कन्या-विक्रय एक भयानक अपराध तो है ही, वह भीषण पाप भी है। परन्तु इस अपराध और पाप की जिम्मेदारी उन बदनसीब पशु-प्रकृति पिताओं पर नहीं जो लोभ और स्वार्थ में अन्धे होकर अभागिनी, अज्ञान बालिकाओं को बेच देते हैं। इसके असली जिम्मेदार तो वे धर्म शास्त्र हैं जिन्होंने बचपन की शादी को धर्म-कर्म बताया, जिन्होंने रजस्वला कन्या को देखना नर्क का कारण बताया—जिन्होंने कन्याओं को दान करने की चीज बनाया, जिन्होंने पुत्रियों को समाज का अभिशाप—सन्तानों की निषिध वस्तु ठहराया। यदि ये दूषित और लानत भेजने योग्य धर्मशास्त्र

ऐसे बेहूदे विधान न करते तो आज पिता अभागिनी बालिकाओं को बेचने के लिये स्वाधीन न हो सकते थे। कन्यायें भी मनुष्य के अधिकारों को प्राप्त करतीं, और अपने जीवन, भविष्य और लाभ-हानि पर विचार करतीं।

आज लाखों कन्यायें बूढ़े खूसटों के अत्याचार का शिकार बनती हैं। दो-एक रोमांचकारी आंखोंदेखी घटना हम यहां बयान करना आवश्यक समझते हैं। एक करोड़पति सेठ ने जिन्हें दीवान-बहादुर का खिताब था, ६५ वर्ष की अवस्था में एक ११ वर्ष की लड़की से विवाह करने की ठानी। सुना गया कि लड़की बीकानेर राज्य भर में एक मात्र सुन्दरी बालिका है। कन्या को मृत्यु शैया पर हमने देखा था, इसमें तनिक भी अत्युक्ति न थी। कन्या की सगाई उसके पिता ने एक अन्य दहेजुआ आदमी से साढ़े चार हजार रुपया लेकर करदी थी। परन्तु सेठ ने उसके ग्यारह हजार दाम लगा दिये। इस लिये सगाई सेठ को चढ़ा दी गई। इस पर वह व्यक्ति जिसे सगाई चढ़ गई थी, आया और पंचों से फरियाद करता फिरा, परन्तु कोई भी पंच सेठ के विरुद्ध न जा सकता था। वह व्यक्ति हमारे पास आया, और हमने उसे नुसखा बता दिया। हमने उसे सलाह दी कि अमुक मन्दिर में अन्न-जल त्याग धरना देकर बैठ जाओ। ५०) पुजारी को चुका दो और कह दो, जब तक मैं अन्न-जल न ग्रहण करूँ, ठाकुरजी को भोग न लगाया जाय। यही किया गया और दोपहर तक नगर भर में अफवाह फैल गई कि आज ठाकुरजी के पट बन्द हैं दर्शन नहीं होते, न भोग लगता है, उसका कारण यह है कि फरियादी ने वहाँ धरना

दिया है। गरज़ भीड़-की-भीड़ वहां आने लगी और पंचायत जुड़ी—फ़ैसला यह हुआ कि उसके रुपये वापस दे दिये जायं। सेठ ने पंचों को ग्यारह हजार की लागत की एक बगीची मय अहाते के पंचायत के नाम देकर यह फ़ैसला खरीदा था। विवश वह रुपया ले घर में बैठ रहा। तब नगर के युवकों ने लड़की के मामा को बुला कर उसे आगे कर दावा दायर कर दिया। वह महायुद्ध के दिन थे। सेठ ने एक लाख के वार बौण्ड खरीद कर अपने हक़ में फैसला ले लिया। और तत्काल विवाह की तैयारी होने लगी। चीफ कमिश्नर पहाड़ पर थे, तार द्वारा अपील की गई। वहां से विवाह रोकने की आज्ञा भी आई — पर विवाह जङ्गल में एक वृक्ष के नीचे कर दिया गया।

बालिका के विवाहित होने के ६ महीने बाद सेठजी मर गये। उनकी मृत्यु के एक मास बाद वह प्रथम बार रजस्वला हुई और ३ मास बाद एकाएक रात को २ बजे हमें बुलाया गया। देखा वह मर रही थी और उसे ज़हर दिया गया था। दूसरे दिन धूमधाम से उसका शव निकाला गया और उस पर अशर्फियां लुटाई गईं।

यह एक उदाहरण है, परन्तु हमारे पास एक-से-एक बढ़ कर हज़ारों उदाहरण हैं। इन बालिकाओं में न तो प्रतिकार का ज्ञान है, न शक्ति। वे चुपचाप इस अत्याचार का शिकार बन जाती हैं, और इसका परिणाम हिन्दू जाति का सामूहिक नैतिक पतन होता है। ऐसी लड़कियां बहुधा नीच जाति वालों या बदमाशों के साथ भाग जाती हैं — जो इस प्रकार के मामलों की ताक में लगे रहते हैं।

मैं ऐसी अनेक छोटी-छोटी रियासतों की रानियों को जानता हूँ कि जिन्हें उनके लम्पट रईस पतियों ने बुढ़ापे में ब्याहा और जवानी में छोड़ मरे। और वे खुली व्यभिचारिणी और स्वेच्छाचारिणी की भांति विचरण करती हैं। एक बार एक युवक ने हमें बीस हजार रुपया भेंट करने चाहे थे, यदि मैं उसकी माता को जो उस समय मेरी चिकित्सा में थी, विष देकर मार डालता; और उसका कारण यह था कि वह युवक के मृत पिता की चौथी स्त्री थी। जो आयु में उस युवक की स्त्री से बहुत कम थी और एक मुनीम से खुल्लमखुल्ला फंसी थी, तथा लाखों रुपया उसे लुटा रही थी। एक रियासत में हमारे पुराने परिचित एक मित्र महाराज के प्राइवेट सेक्रेटरी थे, जो उनके मरने पर महारानी के भी प्राइवेट सेक्रेटरी रहे। कुछ दिन पूर्व हमें दैवयोग से उस स्टेट में जाने का अवसर हुआ। तब युवक राजकुमार अधिकार-सम्पन्न हुए थे। चर्चा चलने पर उन्होंने अपने क्रोध को रोककर कहा यदि वह सूअर यहां आयगा तो मैं अपने हाथ से उसे गोली मार दूंगा।

वृद्ध विवाह संसार के सभी देशों में होता है, परन्तु बराबर की स्त्रियों के साथ। पोती के समान बालिकाओं को इस प्रकार संसार की कोई भी सभ्य जाति कुर्बान नहीं करती।

इस कुप्रथा के कारण अनेक बूढ़े खूसट धन के लालच में गुणवती कन्यायें पा जाते हैं, और दरिद्र युवक रह जाते हैं।

एक कामुक रईस ने सत्तर वर्ष की आयु में विवाह करने की इच्छा प्रकट की। और जब हमने उससे इसका कारण पूछा तो कहा—हमारे मरने पर कोई रोनेवाला भी तो चाहिए। इस पतित

रईस की बातें सुन कर मिश्र के पुराने राजाओं का हमें स्मरण हो आया जो अपनी समाधियों में जीवित स्त्रियों को दफनाया करते थे।

बाल पत्नियों के भयानक कष्टों को हमें देखने के बहुत अवसर मिले हैं। इस कुप्रथा से हमारा बहुत कुछ शारीरिक और मानसिक ह्रास हो रहा है। बड़ी उम्र के लोगों की पत्नियों की जो अपना दूसरा और तीसरा विवाह करते हैं, बड़ी दुर्दशा होती है। वे प्रायः पति संसर्ग से भागा करती हैं और अन्त में उनके साथ जो व्यवहार किया जाता है, उसे बलात्कार के सिवा कुछ कहा ही नहीं जा सकता।

एक चालीस वर्ष के पुरुष ने ग्यारह वर्ष की बालिका से शादी की थी। कुछ दिन बाद ही उसके गर्भ रह गया तो उसका आप्रेशन करके बच्चा निकाला गया, और वह लड़की सदा के लिए अपङ्ग होगई।

एक रोमाञ्चकारी घटना हमें मालूम है कि ग्यारह साल की लड़की का विवाह पैंतीस वर्ष के एक व्यक्ति से हुआ था। यह व्यक्ति प्रतिष्ठित और सम्पन्न था। उसने हठपूर्वक बालिका को बुला लिया। उसकी माता ने विदा करने से पूर्व कृत्रिम रीति से उसके गर्भाशय को बड़ा करने की चेष्टा की। जिससे उसके शरीर से रक्त का प्रवाह जारी होगया। जब वह पति के पास गई और उसने सहवास किसी भी भांति स्वीकार न किया, तब क्रोध में आकर उसने उसे तिमंजले पर से सड़क पर फेंक दिया, और वह कुछ देर बाद मर गई।

हाल में बंगाल के अन्तर्गत नोआखाली नामक स्थान से एक ऐसा लोमहर्षक समाचार आया है जिसने रात-दिन घटित होने वाली पैशाचिक घटनाओं से अभ्यस्त जनता को भी चकित कर दिया है। वहां की अदालत में कमला नाम की १४ वर्ष की लड़की ने अपनी करुण कहानी सुनाई। लड़की का कहना है कि तीन-चार वर्ष पहले हरिपद विश्वास नामक एक व्यक्ति के साथ उसका विवाह हुआ था। वह सुसराल ही में रहती थी। उसके पति के चार भाई और थे। वे सब अविवाहित थे। एक साल पहिले की बात है कि सास ने उससे अपने देवर ननीपद के साथ अवैध सहवास करने के लिये कहा। उसने स्वीकार नहीं किया। उसने बहुत हठ किया, पर वह न मानी। इसका फल यह हुआ कि सास-ससुर ने उसे मारना शुरू कर दिया ? पाशविक व्यवहार की भी कोई सीमा होती है? कुछ भी हो, लड़की ने जब अपने पति से ये सब बातें कहीं तो वह क्रुद्ध हो अपने माता-पिता का साथ छोड़कर किसी दूसरे मकान में चला गया। पर फिर वापस आकर उसके पति ने भी अपने माता-पिता की बात का समर्थन किया। तब से उसका पति, सास, ससुर तथा देवर सबने मिलकर उसके ऊपर अत्याचार शुरू कर दिया। उसके हाथ-पांव बांधकर वे लोग उसे कांटेदार लकड़ी से पीटा करते थे; कभी-कभी पीठ पर छुरी से मारते थे; कभी घर की छत से उसे नीचे लटकाकर उसके मुँह में कपड़ा ठूँस दिया जाता था, ताकि रो न सके। एक दिन उसके देवर ननीपद के कहने पर उसकी सास ने पिसी हुई मिर्च बल-पूर्वक उसके गुप्त अङ्ग के भीतर डालदी। असह्य वेदना से वह

छटपटाने लगी। लगातार तीन-दिन तक उसे खाने को नहीं दिया गया। सास-ससुर जिस कमरे में सोते थे, ननीपाद भी उसी में सोता था। लड़की स्वयं दूसरे बिस्तर में सोती थी ननी ने बल-पूर्वक उसका सतीत्व नष्ट करना चाहा। इस समय उसकी आत्म-हत्या करने की इच्छा हुई। जब वे लोग उसे पीटते तो वह रोती, उसका रोना सुनकर पड़ोस के सम्भ्रांत लोग आते; वे लोग उन्हें गालियाँ देकर निकाल देते। उसे केवल एक जून भात खाने को मिलता था; दाल, तरकारी वग़ैरह कुछ नहीं दिया जाता था। सरसों के कच्चे तेल के साथ वह भात खाती। एक दिन उसका देवर ननी लगातार कई घण्टे पीटने के बाद उसके मुँह के भीतर कपड़ा ठूँसकर उसे पकड़कर उसके बाप के मकान में डाल गया और भाग कर चला गया। इसके पहिले एक दिन उसकी सास और देवर ने खिड़की में लगी हुई लोहे की छड़ के साथ एक रस्सी से उसका गला, हाथ और पांव कसके बांध दिये, उसने अदालत को रस्सी के दाग़ दिखाये। लड़की ने अदालत में यह भी कहा कि दूसरे देवर भी उसे बीच-बीच में तङ्ग किया करते थे। घर का सब काम उसी को करना पड़ता था। सास उसे किसी काम में बिलकुल सहायता नहीं देती थी। उसके ससुर का चरित्र भी अच्छा नहीं था; अक्सर रात को कुलटा स्त्रियां उसके पास आती थीं। उसने कहा कि जवानी में उसकी सास का चरित्र भी अच्छा नहीं था—ऐसा उसने सुना है।

सर हरीसिंह गौड़ के सहवास बिल पर अब तक बड़ी भारी दिलचस्पी ली जाती रही है। इस क़ानून के अनुसार १६ वर्ष से

कम आयु की विवाहिता पत्नी से भी कोई सहवास न कर सकेगा। यदि ऋतुमती होने के बाद ही कम उम्र में लड़कियों के साथ सम्भोग किया जायगा तो उनकी सन्तान अवश्य ही कमज़ोर होगी, पर सनातनधर्मी ब्राह्मणों को कमजोर सन्तान उत्पन्न करने से कुछ हानि नहीं। उनकी सन्तान जन्म श्रेष्ठ ही ठहरी, इसलिए वे ऋतु काल से पूर्व ही किसी सद्वंश की कन्या का पाणीग्रहण कर अपना और दस पूर्वजों तथा दस आगामी वंशजों का इस प्रकार इक्कीस पीढ़ी का उद्धार कर डालना चाहते हैं।

पाराशर स्मृति के सातवें अध्याय में लिखा है कि लड़की के जो माता-पिता या बड़े भाई बारह साल की आयु से प्रथम उसका विवाह नहीं कर देते वे नर्क को जाते हैं। जो ब्राह्मण इससे बड़ी आयु की कन्या से विवाह करे उसे जाति से बाहर निकाल देना चाहिए और इस काम के लिए उसे यह प्रायश्चित करना चाहिए कि वह तीन वर्ष तक भीख माँगकर जीवन निर्वाह करे।

विचारने की बात तो यह है कि मर्द ४० या ५० वर्ष की आयु होने पर भी १०-१२ साल की लड़की से शादी कर लेता है, पर शास्त्रों को इसमें एतराज़ नहीं। केवल लड़कियों का विवाह ऋतु-मती होने से पूर्व हो जाना चाहिए और यदि उनका पति मर जाय तो उन्हें जीवन भर विधवा बनकर बैठा रहना चाहिए।

ये पतित हिन्दू इस कल्पित नर्क से भय खाकर अपनी पुत्रियों का तो सर्वनाश करते हैं, पर बेजोड़ विवाह के गुनाह पर ज़रा भी इनके पापिष्ठ कलेजे नहीं थर्राते। बहु-पत्नी की प्रथा रईसों में ही नहीं सर्वसाधारण में भी बहुधा देखने को मिलती है। सर्वसाधारण

में एक पत्नी के जीवित रहते दूसरा विवाह करना बहुधा इस आधार पर किया जाता है कि प्रथम पत्नी से सन्तान नहीं हुई। पर ये धूर्त स्वार्थी क्या इस बात की परीक्षा भी करते हैं कि दोष उनमें है या उनकी स्त्री में।

राजा और रईसों के घरों में बहु-पत्नी की प्रथा उनके लिए शान की बात है। हमें बहुत से बड़े घरों के हालात मालूम हैं, जहां प्रति वर्ष दो-चार खून या गुप्त हत्यायें केवल स्त्रियों के कारण ही होती हैं। कुछ दिन पूर्व एक बड़े राजा की चिट्ठियां छापी गई थीं जिसने जबरदस्ती एक रईस की स्त्री को हथिया लिया था और कुछ रुपया देकर उसका सर्वाधिकार प्राप्त करना चाहा था। इसमें महत्व पूर्ण बात यह थी कि ब्रिटिश सरकार के एक उच्चाधिकारी ने इस सौदे को पटाने में हाथ-बटाया था।

इन राजा और रईसों के घरों में कैसे महापाप होते हैं और कैसी-कैसी वीभत्स घटनायें होती हैं इस पर अब तक बहुत कुछ प्रकाश पड़ चुका है। परन्तु जब तक पत्नी के लिए ऐसे पतित पति की आज्ञायें मानना और सौत के आधीन होना धर्म की बात समझी जाती है तब तक इस कुकर्म से स्त्री जाति को छुटकारा नहीं मिल सकता।

अनमेल विवाह एक पाप है—परन्तु हिन्दू समाज में वह एक ऐसे बन्धन में है कि जैसी भी अनमेल स्थिति में वद्ध स्त्री-पुरुष हों उनका धर्म है कि वे उसमें सन्तुष्ट हों। इस अनमेल विवाह के कारण लड़कियों को बहुत से कष्ट उठाने पड़ते हैं, जिनके फल-स्वरूप गर्भाशय और जनेन्द्रिय सम्बन्धी रोगों से भारत की प्राय प्रत्येक स्त्री दुःखी है।

विधवाओं से देश के कुछ भाग में ऐसा अत्याचार पूर्ण व्यवहार किया जाता है कि देखते छाती फटती है। स्त्री शिक्षा की दशा असन्तोष-जनक होने से उनकी हालत और भी दुःखदाई हो जाती है। यद्यपि लड़कियों को पढ़ाना पाप समझने वाले अब बहुत कम रह गये हैं, फिर भी उनको शिक्षा देकर उन्हें स्वावलम्बी होने की योग्यता प्राप्त कराने वाले माता पिता उङ्गलियों पर गिनने योग्य हैं। इसलिए अधिकतर स्त्रियां अज्ञान में फंसी हैं और यही उनके कष्टों का एक भारी कारण है।

कुछ लोगों का कहना है कि इन सब कुप्रथाओं का कारण हमारी राजनैतिक पराधीनता और आर्थिक दरिद्रता है। यद्यपि यह कथन सम्पूर्णतया सत्य नहीं फिर भी कुछ अंशों तक तो इस में सत्य है ही। परन्तु असल बात तो यह है कि हमारी कुप्रथाओं की परम्परागत संस्कृति और उन्हें क़ायम रखने की हमारी खोटी प्रवृत्ति ही हमारी राजनैतिक और आर्थिक दरिद्रता का असली कारण है। लकीर का फ़क़ीर होना, रूढ़ियों का ग़ुलाम होना हमारा स्वभाव है और इसी कारण हम आंख मूंदकर उन घृणास्पद और निकम्मी प्रथाओं को मानते रहे हैं जिनमें कुछ भी सार नहीं, और उन नई प्रथाओं को हम स्वीकार नहीं कर सकते जो हमारी उन्नति और रक्षा के लिए बहुत ज़रूरी हैं।

सती होना हिन्दू समाज में किसी ज़माने में उच्च कोटि का हिन्दू धर्म समझा जाता था, और शताब्दियों तक स्त्रियां ज़बर्दस्ती सती होती रहीं। जिनके वर्णन अत्यन्त रोमांचकारी हैं। हिन्दू विधवा का जीवन कैसा रोमांचकारी, कथा पूर्ण, कष्टों का समुद्र

और शुष्क है यह प्रत्येक हिन्दू को विचारने के योग्य है। यहां हम एक अभागिनी विधवा का—जो समाचार पत्रों में सती कह कर प्रसिद्ध की गई थी थोड़ा सा संक्षिप्त हाल लिखते हैं—

दो वर्षकी आयु में एक धनी घर में उसकी सगाई हुई और ८ वर्ष की आयु में वह विधवा हो गई। इसके बाद वह संयुक्त परिवार के १७ स्त्री-पुरुषों के बीच में रहने लगी। वह शीघ्र ही उन सब की गालियां और तिरस्कार एवं मारपीट की अधिकारिणी हो गई। सबसे अधिक अत्याचार उस पर सास और विधवा ननद का था। उसने बड़े कष्ट से ६ साल काटे। उसके ऊपर यौवन आया और संसार का सबसे बड़ा संकट उसके सन्मुख आया। उसके जेठ की उस पर कुदृष्टि पड़ी। वह नीच और लम्पट आदमी था। उसके भाव को ताड़ कर वह अभागिनी भयभीत रहने लगी, और अन्त में उसने कुए में डूब मरने का इरादा कर लिया। इस इरादे को जान कर उसकी सास ने उसे क्रोध से पकड़ कर उसका हाथ उबलते हुए चावलों में डाल दिया और कहा—अब समझ कि मरना कैसा है? अभागिनी स्त्री उस पीड़ा को सह गई और बराबर काम करती रही। अन्त में न जाने कहां से उस ने कुछ प्राचीन सतियों के कुछ वर्णन सुने और उसे सती होने की धुन सवार होगई। एक प्रकार के उन्माद में प्रसित होकर उसने अपने सती होने की इच्छा बल-पूर्वक सब पर प्रकट करदी।

यह जानकर उसकी सास ने प्रसन्न होकर कहा—"तू धन्य है, जा मेरे पुत्रको सुखीकर।" उसके लिये ब्याह के वस्त्र मंगवाये गये और खूब गहने पहनाये गये। गाँव भर में चर्चा फैल गई।

सब उसे गा-बजाकर जङ्गल में ले गये। उसी के पाथे हुये उपलों से चिता चुनी और उसे उस पर सुला दिया गया। उसका एक हाथ और सिर छोड़ सारा शरीर ढाँप दिया गया था। हाथ में फूँस का पूला दे उसमें आग लगादी। क्रिया कर्म वाले पण्डित ज़ोर-ज़ोर से मंत्र पढ़ने और घी डालने लगे—ज़ोर के बाजे बजने लगे, और जय-जय कार होने लगा। धूएँ का तूमार उठ खड़ा हुआ। इस प्रकार वह अभागिनी जलकर ख़ाक हो गई और सती कहलाई। पीछे पुलिस ने बहुत से लोगों का चालान किया।

श्रीमती डा० मुथ्युलक्ष्मी रेड्डी ने एक बार व्यवस्थापक सभा में कहा था—"हिन्दू क़ानून के अनुसार एक साथ कई स्त्रियों से विवाह किया जा सकता है। इस लिये जब पति लड़की को अपने घर बुलाना चाहे, उसके माता-पिता हरगिज़ इनकार नहीं कर सकते, क्योंकि सदैव ही इस बात का भय बना रहता है कि लड़के की दूसरी शादी न कर दी जाय।"

शारदा विवाह बिल के विरोध में कुम्भ कोकनम के स्वामीकुल मठ के जगतगुरु शङ्कराचार्य ने घोषणा की थी कि 'यह बिल हिन्दू धर्म के उन पवित्र सिद्धान्तों के सर्वथा प्रतिकूल है, जिन्हें सनातनी ब्राह्मण बहुत प्राचीन काल से मानते चले आए हैं। पवित्र सिद्धान्तों में इस तरह का हस्ताक्षेप हम किसी कारण से भी सहन न कर सकेंगे।

अब यद्यपि सती की प्रथा क़ानूनन उठा दी गई है, पर अदालतों के सामने हर साल ग़ैरक़ानूनी सती का एक-न-एक मुक़द्दमा आता ही रहता है। प्रायः बहुत सी विधवायें जीवन के

कष्टों से ऊबकर वस्त्रों पर मिट्टी का तेल डालकर जल मरती हैं। खासकर बंगाली अखबार वाले उन सब को सती का रूप देते हैं, और खूब रंगकर उनका वर्णन छापा करते हैं।

कुछ दिन पूर्व बनारस में अखिल भारत वर्षीय ब्राह्मण कानफ्रेन्स हुई थी जिसमें भारत के सब भागों के तीन हजार शास्त्री एकत्रित हुए थे। उनमें गहन संस्कृत भाषा के सत्रह प्रस्ताव पास हुए जिनमें एक यह भी था कि लड़कियों का विवाह आठ साल की आयु में कर लिया जाय। अधिक-से-अधिक नौ या दस साल तक अर्थात् ऋतुमती होने से पूर्व तक।

पर्दा हिन्दू समाज पर एक अभिशाप है। जिसे दूर होने में अभी न जाने कितनी देर है। हमने स्त्रियों को सब तरह से असहाय कर रक्खा है।

बड़े घरों में हमें जाने का बहुधा अवसर मिलता रहता है। एक प्रतिष्ठित जमींदार के घर का हाल सुनिये—

मकान की दूसरी मंजिल पर एक कमरा लगभग १२ गुणा ६ फ़िट था। तीन तरफ़ सपाट दीवारें और सिर्फ़ एक तरफ़ एक दरवाजा है जो कि एक लम्बी गेलरी में है। कमरे में सदैव ही अन्धकार रहता है। इसमें एक पुरानी दरी का फ़र्श पड़ा है, जो शायद साल में एकाध बार ही झाड़ा जाता है। दीवारें काली हो गई हैं और उनमें सदैव ही दुर्गन्ध भरी रहती है। घर भर की स्त्रियाँ इसी में दिन भर बैठी रहती हैं, और भांति-भांति की बातें करती हैं। घर की बूढ़ी गृहणी वहीं पीढ़ी पर बैठती है, उसे घेर कर तीन बेटों की स्त्रियाँ, दो विधवा बेटियाँ, कई चचेरे भाइयों, भतीजों की स्त्रियाँ,

एक दो दासियां, सब वहीं भरी रहती हैं। कुछ तम्बाकू खाती हैं, वे फ़र्श पर योंही थूकती रहती हैं। बच्चे १५-२० बेतरतीबी से योंही खेलते कूदते फिरा करते हैं। कभी रोते, कभी मचलते, कभी शोर मचाते और कभी ठूंस-ठूंसकर खाते और वहीं सो रहते हैं।

ये स्त्रियां दिन भर कुछ काम नहीं करतीं। उनका ख़ास काम पतियों की आज्ञा पालन करना या सोना है। वे सब घर में ठाकुर-पूजा करती हैं, भोजन के समय पति को खिला कर खाती हैं। कभी पति से बोलती नहीं, उसके सामने आती नहीं, दिन-भर पान कचरतीं, मिठाइयाँ खातीं या सोती रहती हैं, उनकी बातचीत के विषय—गहना, कपड़ा, बच्चों की बीमारियां, बच्चे पैदा होने की तरकीबें, गंडे, तावीज़, जन्त्र, मन्त्र, तन्त्र, साधु, पति को वश में करने की तरकीबें आदि होते हैं, एक दूसरे की निन्दा, कलह यही उनकी नित्य-चर्या है।

वे प्रायः सब अपढ़ हैं। एक पढ़ी लिखी बहू है, उसकी उन सबके बीच में आफ़त है। बुढ़िया सबको हुक्म के तावे रखना चाहती है, और पढ़ना-लिखना भ्रष्टता का लक्षण समझती है।

सब स्त्रियाँ प्रायः रोगिणी हैं। दो बहुएं क्षय से मर गई हैं। एक की प्रसूति में मृत्यु हुई है। जब वृद्धा से कहा गया कि आप लोगों को धूप और खुली हवा में रहना चाहिये और परिश्रम करना चाहिये, तब वृद्धा ने कुछ नाराज़ी के स्वर में कहा—परिश्रम नीच जाति की स्त्रियां करती हैं या भले घर की बहू-बेटियां?

जिस स्त्री को खांसी और ज्वर है उसके दोनों फेफड़े क्षय रोग से आक्रान्त हैं। पर वह अपने बच्चे को दूध बराबर पिलाती

है। बच्चा भी अत्यन्त कमजोर है, वह रात-भर रोया करता है। वह स्त्री अपना कष्ट भूल कर उसे रात भर गोद में लेकर हिलाती रहती है।

स्त्रियां और बच्चे इस घर में बराबर मरते ही रहते हैं। पर और नये पैदा होते ही रहते हैं। यह सिलसिला बराबर जारी रहता है।

वे स्त्रियाँ इस गन्दे अन्धेरे घर में प्रसन्न हैं। उन्हें पतियों के प्रति शिकायत नहीं। वे खुली हवा में घूमना अधर्म समझती हैं, पति के साथ घूमना या बात करना तो एकदम पाप की बात है। वे हमारे उपदेशों को उपेक्षा और हसी में टाल देती हैं। कभी-कभी बहस भी करने लगती हैं। वे अपने दुर्बल काले रोगी बालकों को प्यार करती हैं—उन पर उन्हें अभिमान है, एक स्त्री का जो पढ़ी-लिखी है, घर भर अपमान करता है—क्योंकि उसके अभी पुत्र नहीं हुआ है और वह उनकी गोष्ठी से अलग रहती है।

जो बहुएँ मर चुकी हैं, उन्हें वृद्धा भाग्यवान् समझती है, और अपनी विधवा बेटियों को अभागिनी कह कर रोया करती है।

बुढ़िया को पुत्र-पौत्रों को इधर-उधर बेतरतीबी से रोते-मचलते सोते-बैठते, चीखते-चिल्लाते देख कर बड़ा आनन्द आता है। वह कल्पना नहीं कर सकती कि जगत में उससे ज्यादा सुखी कोई दूसरा भी है या नहीं।

बच्चों का पालन कुसंस्कारों और रूढ़ियों के कारण ऐसा गर्हित हो गया है कि अपने जन्म के बाद पहले ही वर्ष में प्रत्येक तीन बच्चों में एक मर ही जाता है। भारतवर्ष के बच्चे पशुओं

और कीड़ों से किसी भांति श्रेष्ठ नहीं समझे जाते। एक बार कृष्ण-मूर्ति ने अपने एक व्याख्यान में कहा था—

"भारतवर्ष में बच्चे किस भांति खुश रह सकते हैं? मैं तुम से अपनी ही बचपन की ओर दृष्टि फेंकने को कहता हूँ, मैं नहीं कह सकता कि मेरा बचपन सुखपूर्ण था। मैं अपने माता-पिता के विरुद्ध कुछ नहीं कहता। क्योंकि जो कुछ हुआ वह प्राचीन प्रथा के अनुसार चलने का फल था। भारतवर्ष में बच्चे जितनी बुरी हालत में रहते हैं, संसार के और किसी देश म वे वैसे नहीं रहते? भारतवर्ष में बच्चा सब से अभागा प्राणी है। न उसका कोई अलग स्थान होता है और न चित्त विनोद का कोई साधन, वह जब चाहता है सो जाता है। बच्चों की देख-भाल का कोई ख्याल नहीं रखता। तुम और मैं इन बातों को भली भाँति जानते हैं। यह सच है कि जाहिर में बच्चों को बहुत प्यार किया जाता है। पर बच्चे के कल्याण के लिए उस प्यार में कोई नियम नहीं है……बच्चा गन्दगी, कीचड़ और धूल में रहकर बड़ा होता है। मेरा हमेशा से यह विचार था कि मेरा फिर से भारत में जन्म हो, पर अब अगर मेरे लिये ऐसा अवसर आवे तो मैं हिचकूंगा, क्योंकि अमेरिका और योरोप में बच्चे जैसे प्रसन्न रहते हैं उसका आपको ख्याल भी नहीं है। बचपन ही वास्तव में आनन्दित रहने का समय है, क्योंकि बड़े होने पर हम उसकी याद किया करते हैं। यही अवस्था है जब बालक के भाव दृढ़ हो जाते हैं। आजकल भारत में चारों तरफ जैसी निन्दनीय बातें फैली हुई हैं इनके बीच में रह कर बच्चा कैसे खुश रह सकता है।"

कन्यायें सन्तान रूप कलंक हैं, यह भावना हिन्दुओं की नीच प्रकृति की परिचायक है। राजपूत लोग घमण्ड से कहा करते हैं कि हम किसी को दामाद नहीं बनायेंगे और इसलिए वे जन्मते ही कन्याओं को मार डाला करते थे। परन्तु अब भी लोग ऐसा करते हैं। जाटों में भी ऐसी प्रथा प्रचलित है, और यह तो मानी हुई बात है कि लड़की पैदा होते ही घरवालों के मुँह लटक जाते हैं— मानो कोई बड़ा भारी अपशकुन होगया हो। लड़कियाँ बहुधा घरों में अवज्ञा और अपमान में पला करती हैं। बहुत सी कन्यायें बाल-काल में मर जाती हैं। बंगाल में अनेक कन्यायें दहेज की कुप्रथा के कारण जल मरी हैं। ऐसी हत्याओं की कथा ऐसी करुणापूर्ण है कि उन क्रूर, कमीने, माता-पिताओं तथा जाति-बधनों और कर्म-बन्धनों के प्रति बिना तीव्र घृणा हुए नहीं रह सकती। प्रायः लड़कियों को प्यार करते समय भी मरने की गाली दी जाती है। पर बेटे के लिए ऐसा कहना घोर पाप है।

अछूतों का प्रश्न तो खुला प्रश्न है। उन्हें हिन्दुओं ने बलपूर्वक इतना गिरा दिया है कि वे हमारे सामने ही जीते-जी नरक भोग करते हैं।

आज महात्मा गान्धी के आत्मयज्ञ के कारण परिस्थिति में चाहे भी जैसी हलचल उत्पन्न होगई हो फिर भी यह सत्य है कि अभी तक हम अछूतों को पशुओं से बदतर समझते हैं। साइमन कमीशन को जालन्धर के अछूत मण्डल ने जो अपना वक्तव्य दिया था उसका आशय इस प्रकार है—'हमें हिन्दू धर्म पर विश्वास नहीं। न हम उनके पाबन्द हैं। न हम हिन्दुओं से कोई राज-

नैतिक या सामाजिक सम्बन्ध रखते हैं जो हमें छूने से भी घृणा करते और छाया से दूर रहना चाहते हैं, यद्यपि वे हमें अपने साथ घसीटना चाहते हैं क्योंकि हमारे विना उनका काम नहीं चल सकता।'

इस वक्तव्य में एक अक्षर भी असत्य या अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं है और हम जबतक अपने समाज से उनकी आवश्यकताओं को निकाल न देंगे—हम अछूतों के मित्र नहीं बने रह सकते! लोग पुजारियों और पण्डितों पर नाराज हैं इसलिए कि वे उन्हें मन्दिरों में प्रवेश नहीं करने देते। परन्तु मैं कहता हूँ तुम उन्हें अपने रसोई घर में क्यों नहीं प्रविष्ट होने देते! कौन पुजारी तुम्हें रोकता है। क्या तुम मन्दिरों को रसोई घर से कम पवित्र समझते हो? इस का खुला अर्थ तो यह है कि तुम चिमटे से छूकर धर्म कमाना चाहते हो। दिमाग़ी-गुलामी की भरपूर बू उसमें है।

आज यदि देश के शहरों से पाखाने का वर्तमान सिस्टम उठा दिया जाए और भंगियों को शिल्प, साहित्य, कला के काम सिखाए जायँ और किसी को भी भंगी की आवश्यकता न रहे तो अछूतों का उद्धार हो सकता है, अन्यथा नहीं।

पशुओं के पालन सम्बन्धी अज्ञान हमारा सामाजिक पाप है। बहुत-से उपयोगी पशुओं से तो हम कुछ लाभ उठा ही नहीं सकते। भेड़ें, बकरियाँ, मुर्गे, मुर्गी आदि जानवरों को पालने की तो हमारे धर्म की ही आज्ञा नहीं। हम दूध के पशु पालते हैं—कुछ परिन्दों को पालते तथा सवारी और खेती के पशुओं को पालते हैं—परन्तु इतने निकृष्ट ढंग से कि उसे महामूर्खता कहा जा सकता है।

प्रायः अधमरी गायें और बछड़े गली-गली भटकती दीख पड़ती हैं। कहने को हम बड़े भारी गो-भक्त हैं पर गो-भक्ति की असलियत तो हमारी गोशालाओं की दशा देखने से खुल जाती है। जैसा कष्ट पशु-पक्षी हमारे घरों में पाते हैं वैसा कष्ट मांसाहारी लोग भी पशुओं को नहीं देते। किसी प्राणी को धीरे धीरे बहुत दिनों तक कष्ट देकर मार डालने की अपेक्षा एकदम खतम कर देना कम निर्दयता का काम है।

प्रायः गायों के बच्चे असावधानी से मर जाते हैं और उनकी खालों में भुस भरवा कर उनके सामने रख कर दूध दुहा जाता है। प्रायः बच्चों को कुत्ते फाड़ खाया करते हैं।

एक समय था कि साधारण गृहस्थियों के पास भी हजारों की संख्या में गायें रहती थीं। ईसा से ५०० वर्ष पूर्व कालयन के काल में गौ १० पैसे को, और बछड़ा ४ पैसे को मिलता था। बैल की कीमत ६ पैसा थी, भैंस ८ पैसे में आती थी। और दूध १ पैसे में १ मन आता था, इसके २०० वर्ष बाद मसीह से ३०० वर्ष प्रथम जब भारत पर सम्राट् चन्द्रगुप्त शासन करते थे, घी १ पैसे का २ सेर और दूध २५ सेर मिलता था। ईसवी सन् के शुरू में ४८ पैसे की गाय ६३ पैसे का बैल मिलता था। ५वीं शताब्दी में विक्रमादित्य के राज्य में गौ ८० पैसे में और बैल ५१२ पैसे में मिलता था। अलाउद्दीन के जमाने में घी का भाव दिल्ली में ७४ पैसे मन था और अकबर के जमाने में १६५ आने मन।

यह वह जमाना था जब दूध बेचना पाप समझा जाता था। नगर बस्तियों के बाहर घने बन थे और उनमें गाय स्वच्छन्द चरा

करती थीं। उन दिनों दीर्घायु, निरोगी-काया और दुर्धर्षबल शरीर में रहता था। आज वे दिन न रहे। आज हमारे दुधमुहे बच्चों को भी एक बूँद दूध मिलना दुर्लभ होरहा है। आस्ट्रेलिया की आबादी ४ लाख है और गायें १२ करोड़। पर भारत के ३४ करोड़ नर-नारियों में सिर्फ ४ करोड़। भारत में प्रतिवर्ष ४० लाख गाय-बैल काटे जाते हैं। जिनमें केवल दो लाख भारतीय मुसलमानों के काम आते हैं। शेष ३८ लाख की खपत देश के बाहर होती है। इस समय गो-मांस का सब से सस्ता बाज़ार भारतवर्ष है। इस हत्या से घी-दूध ही नहीं, अन्न की पैदावार भी कम हो रही है। जङ्गल साफ़ हो रहे हैं, जमीनों के रक़बे बढ़ रहे हैं, परन्तु मजबूत गाय-बैलों की देश में बराबर कमी हो रही है।

भारत में क़रीब ८० हज़ार गोरे सिपाही हैं। जिनका मुख्य भोजन गो-मांस है यदि प्रत्येक पुरुष १॥ सेर मांस भी प्रति दिन खाय तो रोज़ाना ६४६ मन और साल-भर में ३ लाख ४५ हज़ार २६० मन हुआ। इतना कितनी गौओं की हत्या से मिलेगा? फिर ७ करोड़ मुसलमान भी हैं जो ज़िद या ग़रीबी के कारण बकरे का मांस जिसे हिन्दुओं ने महंगा कर दिया है, न खाकर सस्ता गाय का मांस खाते हैं।

दर्जन-भर सरकारी क़साई-घरों के अलावा देश में ३॥ लाख क़साई हैं। यह जानकर रोमांच होता है आज ऋषियों की पवित्र भूमि पर २० करोड़ मांसाहारी मनुष्य रहते हैं। इनमें से ७ करोड़ मुसलमान और १० लाख अंग्रेज निकाल दिये जायं तो भी १२॥ करोड़ हिन्दू बच रहते हैं।

इसके सिवा गत १० वर्षों में ३२ लाख जीते पशु काटे जाने के लिए पानी के रास्ते और १८ लाख से ऊपर खुश्की के रास्ते ईरान तिब्बत आदि को मांस के लिए भेजे गये हैं।

यह दया-धर्म वाले हिन्दुओं के धर्म का नमूना है। जो लाखों रुपया रखने पर भी गायें पालना आवश्यक नहीं समझते।

पशुओं का घर में वही स्थान होना चाहिये जो घर में बच्चों का होता है। पशु पालना दया के ऊपर निर्भर नहीं, प्रेम के ऊपर रहना चाहिये। परन्तु हमारी पशु दया की रूढ़ि है, हम में त्याग नहीं।

अब हम छोटी-छोटी कुछ कुरीतियों का दिग्दर्शन करके इस अध्याय को समाप्त करेंगे।

संस्कारों को ही लीजिये, उपनयन, कर्णवेध, मुण्डन आदि सर्वत्र ही कुरीतियों का दौर-दौरा है! एक नाटक सा करके इन संस्कारों की रस्में पूरी की जाती हैं।

गमी होने पर बिरादरी भोज एक विचित्र और घृणास्पद बात है। घर वालों के आंसू बह रहे हैं। और पुरोहित और बिरादरी तर-माल उड़ा रहे हैं। पुरोहित की बन आती है, मृतात्मा की सद्गति के बहाने गोदान, शैयादान जाने क्या क्या दान करवाते हैं। श्राद्धों की धूमधाम विवाह से बढ़ जाती है। क्या मृत-व्यक्ति को इससे वास्तव में कुछ लाभ पहुँचता है। गया पिण्ड और तर्पण करते देखा गया है; पण्डे किस भाँति हलाल करते हैं। क्या कोई यह भी पूछ सकता है कि इन सब दान धर्म का मृत-व्यक्ति से कोई सम्बन्ध हो सकता है?

(१)

पाखण्ड

पाखण्ड में सब से पहिला नम्बर मूर्त्ति-पूजा का है। दो हजार वर्ष से भी अधिक काल से इस पाखण्ड ने मनुष्य जाति को बेवकूफ बनाया है। आज संसार भर की सभ्य जातियों ने मूर्ति-पूजा को नष्ट कर दिया है। वह या तो कुछ जङ्गली जातियों में जो तातार के उजाड़ प्रदेश में हैं, अथवा अफ्रीका के सभ्य लोगों में है या फिर अपने को सब से श्रेष्ठ समझने वाले हिन्दुओं में प्रचलित हैं। यहाँ हम संक्षेप से इस मूर्ति-पूजा का इतिहास दिये देते हैं।

सब से प्रथम मैं दृढ़ता-पूर्वक यह बता देना चाहता हूँ, कि प्राचीन-काल के हिन्दुओं का कोई मन्दिर न था और वे मूर्त्ति-पूजा नहीं करते थे वेद में मूर्त्ति-पूजा का कोई विधान नहीं है। वेद में उन देवताओं का भी कोई जिक्र नहीं है, जिन्हें इन पेशेवर गुनह-गारों ने कल्पित करके झूठ और बेईमानी को दुकान खोली है,

हम आपको बता चुके हैं कि प्राचीन-काल में आर्य लोग यज्ञ करते थे और वही उनका प्रधान धर्म-चिन्ह था। इसके बाद जब

बौद्धों ने अपने-अपने उत्तुङ्ग काल में भारत की सीमाओं को पार करके चीन, तातार यूनान और उन प्राचीन प्रदेशों में धर्म-प्रचार के लिये भ्रमण किया जहां असंख्य भयानक देवताओं, जिनों, प्रेतों और भयानक अद्भुत शक्तिशाली जीवों का विश्वास प्रचलित था। तब वे मूर्त्ति-पूजा की भावना को लेकर भारत में लौटे और लगभग इससे कुछ ही पूर्व सिकन्दर के साथ जो यूनानी भारत में आये वे भी अपने संस्कार छोड़ गये। जिसके फल स्वरूप प्रथम बौद्धों में और बाद को हिन्दुओं में मूर्त्ति-पूजा का प्रचार हो गया। यज्ञों के देवता मूर्त्तिमान बनकर बदल गये। वेद का 'रुद्र' जो वास्तव में वायु का नाम था 'गिरीश' या नीलकण्ठ बन गया। मण्डूक-उपनिषद् में वर्णित अग्नि की सात जिह्वायें काली, कराली, सुलोहिता, सुधूमवर्णी आदि शिव की पत्नियां हो गईं। केनोपनिषद् की उमा, हैमवती जिसने इन्द्र को ब्रह्मज्ञान का उपदेश दिया था—शिव की पत्नी कल्पित की गई। शथपथ ब्राह्मण के असुरों को नाश करने वाले विष्णु को भी महत्व मिल गया। जो वास्तव में सूर्य का नाम था। परन्तु इस काल तक भी देवकी पुत्र कृष्ण की देवताओं में गणना न थी। वह छान्दोग्य उपनिषद् में केवल अंगिरस ऋषि का एक शिष्य बताया गया है।

धीरे-धीरे इन पाखण्ड-पूर्ण विधानों के प्रति लोगों की श्रद्धा बढ़ने लगी और प्रसिद्ध पौराणिक देवता ब्रह्मा, विष्णु, शिव के नाम प्रसिद्ध हो गये। ये तीनों देवता सृष्टि के उत्पादन, पालन और संहार, इन तीन कामों के प्रथम देवता थे। वास्तव में यह हिन्दुत्रैकत्व बौद्धत्रैकत्व की नकल थी।

वर्तमान मनुस्मृति में जो बौद्ध काल के प्रारम्भ में बनी है, इस त्रिवेद की कुछ भी चर्चा नहीं है। न उसमें कहीं हिन्दुओं की मूर्त्ति-पूजा का ही जिक्र है। हां, उस समय मूर्त्ति-पूजा प्रारम्भ हो चली थी और उच्च कोटि के हिन्दू उससे घृणा करते थे। परन्तु यह अद्भुत रीति बढ़ती ही गई और हिन्दू-धर्म की प्रधान वस्तु हो गई। अब अग्निहोत्र एक अतीत वस्तु बन गया था। ईसा की छटी शताब्दि में कालीदास के समय में यह प्रथा खूब प्रचलित हो गई थी। फाहियान चीनी यात्री जो भारत में सन् ४०० ईस्वी में आया था। उसने क़ाबुल में बौद्धों का पूर्ण विस्तार देखा था और वह कहता है—वहां ५०० बौद्ध विहार हैं। उसने तक्षशिला का विश्व-विख्यात विश्वविद्यालय देखा था और पेशावर में बहुत बड़ा बौद्ध स्तम्भ देखा था। मथुरा में उसने तीन हजार बौद्ध भिक्षुओं का संघ देखा था और वहां उसने बौद्ध-धर्म का भारी प्रचार देखा था। राजपूताने के सब राजाओं को उसने बौद्ध-धर्मी पाया था उसने सर्वत्र ऐसे विहार देखे थे जिनके लिये राजाओं और श्रीमन्तों ने लाखों रुपये लगाये थे। सर्वत्र घूमता हुआ वह पटने गया और उसने वहां बौद्धों के संघ में प्रथम बार मूर्त्ति को देखा। वह लिखता है—

"प्रति-वर्ष दूसरे मास के आठवें दिन मूर्त्तियों की एक यात्रा निकलती है, इस अवसर पर लोग एक चार पहिये का रथ बनवाते हैं और उस पर बांसों का ठाठ बांधकर पांच खण्ड का बनाते हैं उसके बीच में एक खम्भा रखते हैं जो तीन फल वाले भाले की भांति होता है। और ऊँचाई में २२ फीट या इससे

अधिक होता है। और एक मन्दिर की भांति दीख पड़ता है। तब वे सफेद मलमल से उसे ढकते हैं। और चटकीले रङ्गों से रङ्गते हैं फिर देवों की चांदी-सोने की मूर्त्तियां बना कर चांदी, सोने और कांच से आभूषित करके कामदार रेशमी चन्दुए के नीचे बैठाते हैं। रथ के चारों कोनों पर वे ताख बनाते और उनमें बुद्ध की बैठी मूर्त्तियां जिनकी सेवा में एक बोधोसत्व खड़ा रहता है—बनाते हैं। ऐसे-ऐसे बीस रथ बनाये जाते हैं। इस यात्रा के दिन बहुत से गृहस्थ और सन्यासी एकत्रित होते हैं। जब वे फूल और धूप चढ़ाते हैं। तो बाजा बजता है और खेल होता है। श्रमण लोग पूजा को आते हैं तब बौद्ध एक-एक करके नगर में प्रवेश करते हैं। और वहां वे ठहरते हैं। तब रात-भर रोशनी करते हैं। गाना और खेल होता है। पूजा होती है........।"

वहां से यह यात्रा राजगृही, गया, काशी, कौशाम्बी और चम्पा तक पहुँचा जो पूर्वी बिहार की राजधानी थी। परन्तु उसने कहीं भी एक भी मन्दिर हिन्दुओं का इन तीर्थों में नहीं देखा, सर्वत्र बौद्धों के संघाराम देखे। फिर वह ताम्रपर्णी गया, वहां भी उसने संघाराम देखे। अन्त में वह सिंहल को जहाज में बैठ गया।

इस यात्री के दो सौ वर्ष बाद ह्वेनसांग, चीनी यात्री भारत में आया, वह फर्गन, समरक़न्द, बुखारा और बलख होता हुआ भारतवर्ष में आया। वह सन् ६४० ईस्वी में भारतवर्ष में था।

उसने जलालाबाद को सम्पन्न नगर पाया जो बौद्धों से परिपूर्ण था, उसने वहां ५ शिवाले हिन्दुओं के देखे। और सौ पुजारी भी देखे। कन्धार और पेशावर में उसने १ हजार बौद्ध सङ्घारामों

को ऊजड़ और खण्डहर पाया तथा हिन्दुओं के सौ मन्दिर देखे।

वह मालवे के राजा शिलादित्य का वर्णन करता है जो प्रसिद्ध विक्रमादित्य का पुत्र था। विक्रम ने एक बौद्ध भिक्षु को जिसका नाम मनोत्हृत था हिन्दुओं का पक्षपाती होने के कारण अपमानित किया था—परन्तु शिलादित्य ने उसे बुला कर प्रतिष्ठा की थी। इससे आगे इस यात्री ने पौलुश नगर के निकट एक ऊंचे पर्वत पर नीले पत्थर से काट कर गढ़ी हुई एक दुर्गा-देवी की मूर्त्ति देखी थी। यहां उसने धनी और दरिद्र सबको एकत्रित होकर मूर्त्ति की पूजा करते देखा था। पर्वत के नीचे महेश्वर का एक मन्दिर था और वहां वे साधु रहते थे जो राख लपेटे रहते थे।

काबुल और चमन में जहां दो शताब्दि प्रथम फ़ाहियान ने बौद्ध धर्म का प्रबल प्रताप देखा था—इस यात्री ने सब सङ्घारामों को उजाड़ तथा देवताओं के दस मन्दिर देखे थे, वह तक्षशिला और काशमीर भी गया—वहां उसे जैन मिले जो महावीर की मूर्त्ति पूजते थे। काश्मीर में बौद्ध अभी भी काफ़ी थे। वहां उस समय कनिष्ठ राज्य करता था जो बौद्ध था। और जिसने एक बार बौद्धों के उन्नत करने को सभा बुलाकर महायान समुदाय प्रचलित किया था। उसने पंजाब के राजा मिहिरकुल का भी ज़िक्र किया है जो बौद्धों का प्रसिद्ध बैरी था। जिसने पांचों खण्डों के बौद्ध भिक्षुओं को मार डालने की आज्ञा दी थी और जिसने क़न्धार को विजय कर वहां के राजवंश को नष्ट कर डाला तथा बौद्धधर्म के सङ्घारामों स्तूपों और भिक्षुकों को छिन्न-भिन्न कर दिया था। सिंध के तट पर इसने ३ लाख बौद्धों को क़त्ल करा दिया था।

मथुरा में इसने अभी तक बौद्धों का प्रताप देखा था। वहां अभी २० संघाराम थे और २००० भिक्षु यहां की पूजा उत्सव करते थे।

द्वाब में आकर उसने गङ्गा की प्रशंसा सुनी, जो पापोंका नाश करने वाली प्रसिद्ध थी। वह उसकी भारी धार को देख कर भी बहुत प्रभावित हुआ। हरद्वार में उसने एक बड़ा देवमन्दिर देखा, जिसमें बड़े चमत्कार किये जाते थे। हरकी पैड़ी तब पत्थर की बन चुकी थी, और उसमें नहाने का महात्म्य भी प्रसिद्ध होगया था।

कन्नौज को उसने गुप्त राजाओं की सम्पन्न नगरी पाया था। यहां उसने बौद्धों और हिन्दुओं को बराबर पाया। यहां १०० सङ्घाराम और १० हज़ार भिक्षु तथा २०० देव-मन्दिर और उसके कई हजार पुजारी उसने देखे थे। यहां के प्रतापी बौद्ध राजा शिलादित्य द्वितीय से वह मिला था। जिसने गंगा के पूर्वी किनारे पर १०० फ़ीट ऊंचे स्तम्भ पर एक पूरे क़द की सोने की बुद्धमूर्त्ति स्थापित की थी। वह लिखता है—

"वसन्त ऋतु के तीन मास तक वह भिक्षुओं और ब्राह्मणों को भोजन देता था, संघाराम से महल तक का सब स्थान तम्बुओं और गवैयों के ख़ीमों से भर जाता था। बुद्ध की एक छोटी-सी मूर्त्ति एक अत्यन्त सजे हुए हाथी पर रखी जाती थी और शिला-दित्य इन्द्र की भांति सजा हुआ उस मूर्ति की बाईं ओर और कामरूप का राजा दाहिनी ओर ५-५ सौ युद्ध के हाथियों की रक्षा में चलता था। राजा चारों ओर मोती, सोने, चांदी के फूल एवं अनेक बहुमूल्य चीजें फेंकता जाता था। मूर्ति को स्नान कराया जाता और शिलादित्य उसे स्वयं कन्धे पर रख कर पश्चिम के

बुर्ज पर ले जाता था। और उसे रेशमी वस्त्र तथा रत्न-जटित भूषण पहनाता था। फिर भोजन और शास्त्र-चर्चा होती थी।

इन सब उदाहरणों से पाठक अनुमान लगा सकते हैं कि हिन्दुओं ने मूर्त्तिपूजा ही नहीं उत्सव और त्योहारों का मनाना भी बौद्धों से सीख लिया था। इस यात्री ने अयोध्या में भी बौद्धों के १० संघाराम और ३००० जन अर्हत देखे थे। हिन्दू भी बहुत थे। इलाहाबाद में उसने कट्टर हिन्दू देखे थे। और सङ्गम पर सैंकड़ों मनुष्यों को स्वर्ग पाने की इच्छा से मरते देखा था।

वह कहता है कि—नदी के बीच में एक ऊंचा स्तम्भ था। लोग इस पर चढ़ कर डूबते हुए सूर्य को देखने जाते थे। श्रावस्ती कौशाम्बी और काशी में भी उसने हिन्दुओं का जोर देखा था। काशी में उसने ३० संघाराम और ३००० भिक्षुओं को देखा था। साथ ही १०० मन्दिर और दस हजार मनुष्य पुजारी देखे थे। यहां भी सिर्फ महेश्वर की पूजा होती थी। महेश्वर की ताम्बे की मूर्ति सौ फ़ीट ऊंची थी और वह इतनी गम्भीर और तेजपूर्ण थी कि जीवित जान पड़ती थी।

काशी में, एक विहार में एक क़दे-आदम बुद्धमूर्ति भी इस यात्री ने देखी थी। वैशाली में उसने संघारामों का खण्डहर देखा था और बहुत कम भिक्षुक वहां रहते थे—देव मन्दिर बहुत बन गये थे। मगध में उसने पचास सघाराम देखे जिनमें दस हजार भिक्षु रहते थे। यहां दस हिन्दुओं के मन्दिर थे। पाटलीपुत्र इस के समय में उजड़ गया था। गया में उसने ब्राह्मणों के हजार घर

देखे थे। गया के बोधिवृक्ष और बिहार की चढ़ी-बढ़ी शोभा इस यात्री ने देखी थी। वह लिखता है—

"यह १६० या १७० फीट ऊँचा है। और बहुत सुन्दर बेल-बूटों का काम इस पर हुआ है। कहीं तो मोतियों से गुथी हुई मूर्त्तियां बनी हैं—कहीं ऋषियों या देवताओं की मूर्त्तियाँ हैं। इन सबके चारों ओर ताम्बे का सुनहला आमलक फल है इसके निकट ही महाबोधि संघाराम की बड़ी इमारत है। जिसे लंका के राजा ने बनवाया है। उसकी ६ दीवारें तथा तीन खण्ड ऊंचे बुर्ज हैं। इसके चारों ओर ३०-४० फिट ऊंची फसील है।....इसमें शिल्प की बहुत भारी कला खर्च की गई है। बुद्ध की सोने चांदी की मूर्तियां हैं और उनमें रत्न जड़े हैं। वर्षा ऋतु में वहां बौद्धों का भारी मेला लगता है। लाखों मनुष्य आते और दिन-रात उत्सव मनाते हैं।"

इसने नालंद विश्वविद्यालय में कामरूप के राजा के साथ कुछ दिन व्यतीत किये थे और बड़े-बड़े विद्वानों से इसने बातचीत की थीं। मुंगेर और पूर्वी बिहार में तथा उत्तरी बंगाल में बौद्धों और हिन्दुओं के संघाराम और मन्दिर दोनों ही देखे। फिर वह आसाम मनीपुर, सिलहट आदि में आया जहां हिन्दुओं के बहुत-से मन्दिर बन गये थे। और बौद्धों का बहुत कुछ ह्रास होगया था।

यहां उसने एक भी संगाराम नहीं देखा। ताम्रलिप्त राज्य जो आजकल मिदनापुर के आस-पास है बौद्धों के संघाराम जहाँ-तहाँ देखे। कर्ण सुवर्ण (मुरशिदाबाद) में उसने बौद्धों और हिन्दुओं दोनों को देखा था। उड़ीसा में उसने बौद्धों के १०० संघाराम तथा १० हजार भिक्षु देखे थे। पुरी का मन्दिर नहीं बना था, पर

वहाँ १० मन्दिर हिन्दुओं के बन गये थे और यह स्थान बौद्धों की रक्षा का एक-मात्र स्थान था। बौद्धों की रीति पर आज भी पुरी में जगन्नाथजी की रथ-यात्रा होती है। कालिंग राज्य में बौद्ध धर्म न था। बरार में बौद्ध हिन्दू दोनों समान थे। यहीं प्रसिद्ध सिद्ध नागार्जुन रहता था। आन्ध्र प्रदेश में उसने २० संघाराम और ३० देव-मन्दिर देखे थे। अधिकांश मठ उजड़ गये थे। मन्दिर और उनके पुजारी बढ़ गये थे, द्राविड़ देश में उसने बौद्धों का भारी ज़ोर देखा था, यहाँ १०० संघाराम और १० हज़ार भिक्षु थे। मालाबार में भी उसने बौद्धों और हिन्दुओं को समान देखा था। लंका वह नहीं गया, पर वह लिखता है—वहां १०० मठ और २० हज़ार भिक्षु हैं। महाराष्ट्र प्रदेश में उसने अनेक बड़े बड़े संघाराम देखे, एजेण्टा की प्रसिद्ध गुफायें भी उसने देखी थीं, वहां ७० फुट ऊंची बुद्ध की एक पत्थर की मूर्ति थी। जिस पर एक ही पत्थर का ७ मंज़िला चँदवा था, जो अधर खड़ा था। मालवे में उसने १०० संघाराम और १०० देव-मन्दिर देखे थे। कच्छ, गुजरात और सिन्ध में भी उसने सर्वत्र घटते हुए बौद्ध धर्म और बढ़ते हुए मूर्ति-पूजक हिन्दू धर्म को देखा था।

इन मन्दिरों में इनके पुजारियों ने कुछ ही शताब्दियों में अटूट सम्पदा इकट्ठी कर ली थी और समस्त हिन्दू जाति का धन इन मन्दिरों में एकत्र हो गया। भारत के सभी नगर इन मूर्ख पुजारियों से भर गये। सन् ६१२ ई० में जब मुहम्मद बिन क़ासिम ने दाहर को परास्त किया तब सिंध (हैदरबाद) के एक मन्दिर से उसे ४० देगें ताम्बे की भरी हुई मिली थीं, जिनमें १७२००

मन सोना भरा था। इसके अतिरिक्त ६००० ठोस सोने की मूर्तियां थीं जिनमें सब से बड़ी का वज़न ३० मन था; हीरा, पन्ना, मोती, मानिक इतना था जो कई ऊंटों पर लाद कर ले गया था।

महमूद ग़ज़नवी ने ११वीं शताब्दी के प्रारम्भ में नगरकोट के मन्दिर को लूटा और उसमें से ७०० मन अशर्फी और ७०० मन सोने-चांदी के बर्तन, ७५० मन सोना, २००० मन चांदी और २० मन हीरा-मोती लूट में मिले थे। इसी साहसी योद्धा ने आगे बढ़ कर गुजरात का सोमनाथ का वह प्रसिद्ध मन्दिर लूटा था, जिसमें अनगिनत रत्नजटित ५६ खम्भे लगे थे और मूर्ति के ऊपर ४० मन का वज़नी ठोस सोने की जंजीर से घण्टा लटक रहा था। इस लूट की सम्पदा की गणना न थी।

आज भी यदि आंख के अन्धे हिन्दू आंख खोल कर देखें तो उन्हें अपनी कमाई का सब से बड़ा भाग मन्दिरों में सञ्चित मिलेगा। नाथद्वारा के मन्दिर की ही मैं अपने अनुभव की बात कहता हूँ। इस मन्दिर के लिए उदयपुर राज्य से २८ गाँव जागीर में मिले हुए हैं। और उसका दैनिक खर्च १७००) रुपये का है। आमदनी चढ़ावे की बेशुमार है। ठाकुर जी पर चढ़ावा अलग चढ़ता है, गुसाईंजी पर अलग, उनकी स्त्री और बच्चों पर अलग। इस प्रकार करोड़ों रुपये के जवाहरात इस मन्दिर में सुरक्षित हैं। १७००, रुपये रोजाना का जो खर्चा होता है, इसमें से किसी भी दीन-दुखिया को एक पाई नहीं मिलती, न किसी का इससे उपकार होता है। वह रुपया सब भोग में खर्च होता है और वह

भोग तनखाह के तौर पर काम करने वालों में बांट दिया जाता है जो उसे घर-घर बेचते फिरते हैं।

अन्य मन्दिरों की भी यही दशा है और उनके पुजारियों को वह सब आमदनी स्वेच्छा से खर्च करने का पूरा अधिकार है। सब लोग जानते हैं कि ये पुजारी प्रायः मूर्ख, भगेरी, लम्पट, व्यभिचारी और नीच प्रकृति के होते हैं। पत्थर पूजनेका जड़ काम कोई भी बुद्धिमान् नहीं कर सकता। ईश्वर ही जान सकता है कि कैसे इस महामूर्खता के विचार हिन्दुओं के दिमागों से दूर होंगे।

पण्डे-पुजारियों के बाद पाखण्डियों में दूसरा नम्बर साधु-महात्माओं का है। भारतवर्ष में इस समय ७५ लाख मुस्टण्डे साधु हैं। जिनका पेशा गृहस्थों की गाढ़ी कमाई को हरण करना, खाना-पीना, मौज उड़ाना और गृहस्थ की स्त्रियों में व्यभिचार फैलाना है। ये लोग धेले का गेरू और एक पैसा सिर मुड़ाई का देकर एकदम महात्मा बन जाते हैं। इनके अनेक पंथ और अखाड़े हैं। दादूपन्थी, रामसनेही, कबीर पन्थी, निरञ्जनी, उदासी, नागर नाथ आदि न जाने क्या-क्या। इनके बड़े-बड़े मत और गुरुद्वारे हैं। और उसमें लाखों की सम्पत्ति है। ये लोग जाट, माली, गूजर, बिसनोई, कुरमी आदि किसान पेशा लोगों से चेला मूंडते हैं। वहां आलसी, निकम्मे लड़के मेहनत से बचने के लिए आसानी से मिल जाते हैं। साहूकार के कर्ज से भी बच जाते हैं। ये लोग दिन-भर राम-नाम भजने या माला फेरने का ढोंग किया करते हैं। और खूब माल-मलीदे उड़ाते रहते हैं। एक अंग्रेज यात्री ने इन्हें 'इटेलियन-स्टेलियन कहा है। यह वास्तव में नरों में सांड हैं।

वे अपने को 'अहं ब्रह्मास्मि' कहते हुए अपने ही समान सब को ब्रह्म ही समझने लगते हैं। वे प्रायः अपने शिष्यों को सदा यही उपदेश देते हैं 'ब्रह्मनी ब्रह्म लग्नम्'। और वे आंख के अन्धे गांठ के पूरे 'हरेनमः बापजी' कह देते हैं। मौका पाकर ये ब्रह्मनी से ब्रह्म का सचमुच लग्नम् कर देते हैं। एक बार गुरुदेव की एक ब्रह्मनी (चेली) पर उनके एक ब्रह्म ने ऐसा ही कुछ अनुभव कर डाला—इस पर गुरु ने फटकार कर कहा—अरे पापी, यह क्या किया? उसने कहा— महाराज मैंने तो ब्रह्म से ब्रह्म मिलाया, यह तो पाप नहीं। गुरुजी ताव-पेच खाकर चुप रहे। अवसर पा उन्होंने भी चेले को स्त्री को एक दिन गुरुमन्त्र का अभ्यास करा दिया। परन्तु शिष्य भी पहुँच गये और लगे गुरु को जूती से पूजा करने। गुरुजी जब हाय-तोबा-करने लगे तो शिष्य ने कहा—'महाराज' चर्मनी चर्म लग्नम्। ब्रह्मनी लग्नम् किम्?' अर्थात् चमड़े से चमड़ा लगा ब्रह्म को क्या लगा— वह क्यों रोता चिल्लाता है।

गांजा, सुलफा भँग, चरस आदि का पीना इसका धर्म है। और गालियां बकना इनका स्वभाव। इनके द्वारा जो-जो अनर्थ और अपराध समाज में किये जाते हैं उनका वर्णन हम स्थान-स्थान पर इस पुस्तक में कर चुके हैं।

अब तीसरे दर्जे के पाखण्डियों की सुनिये। ये जोशी बाबा भड्डुरी और पत्रा देखकर शकुन मुहूर्त बताने वाले हैं। ये लोग प्रत्येक गांव शहर और कस्बों में मक्खी की औलाद की भांति भिनभिनाते घूमते रहते हैं और अवसर पाते ही स्त्रियों और बेवकूफों को ठगा करते हैं।

मुहूर्त के लोग इतने क़ायल हैं कि बिना मुहूर्त पूछे वे कोई काम ही नहीं किया चाहते। ज्योंही आपने किसी ज्योतिषी को बुलाया कि वे पत्रा खोल कर गणित करने का पाखण्ड करेंगे, उंगलियों पर कुछ गिनती करेंगे, और फिर सिर हिलाकर धीरे-धीरे गम्भीरता से ऐसी बातें बतायेंगे कि आप बहुत ही चक्कर और चिन्ता में पड़ जायँ। इसके बाद उपाय करने के बहाने आपसे वे खूब ठग-विद्या करेंगे।

एक बार ऐसा हुआ कि मैं एक क़स्बे में ठहरा हुआ था। पड़ौस में किसी के बच्चा हुआ था। एक ऐसा ही ठग वहां जा पहुँचा। अवश्य ही उसने सुराग़ लगा लिया था। वहां पहुँच कर उसने गणित द्वारा बता दिया कि इस घर में कोई जीव जन्मा है। उस पर चौथा चन्द्रमा है। अभी किसी भड्डरी को अमुक-अमुक वस्तु दान करदो—वरना खैर नहीं। लोगों ने भयभीत हो कर कहा—महाराज, आप ही यह दान ले लें—अब हम भड्डरी को यहां कहां पावेंगे। उसने कहा—नहीं बाबा, यह दान जो लेगा उस पर आफत आवेगी, मैं नहीं ले जा सकता, तुम किसी और को ढूँढो। यह कह चला गया। गली के दूसरे छोर पर एक भड्डरी खड़ा देख कर घर वाले उसे बुला लाये और वे पदार्थ उसे दे दिए। पीछे देखा दोनों की मिली-भगत थी।

मुहूर्त बताने के इनके ढङ्ग सुनिये, गिन-गिनाकर और लकीर खींचकर कहेंगे महाराज, आसाढ़ शुक्ला १ रविवार ३ घड़ी ६ पल चढ़े दिन का मुहूर्त बनता है।

आप सन्देह से कहेंगे—बनता तो है क्या माने, ठीक-ठीक बताइये। अब वे पितलाया-सा मुंह बना कर कहेंगे -

'और सब ठीक है' सिर्फ़ चन्द्रमा अपने घर का नहीं। परन्तु दिन रविवार है, इससे हानि नहीं। आप वही मुहूर्त रखिए, इस प्रकार पीछे के लिए अपना कुछ बचाव वे निकाल ही लेते हैं। बहुधा लोग कहा करते हैं—

दिशाशूल ले जावे बांया, राहू योगिनी पूठ।
सन्मुख लेवे चन्द्रमा, लावे लक्ष्मी लूट॥

विवाह-शादियों का तो एक खास साहलग होता है, उन दिनों के अलावा आप विवाह आदि शुभ कर्म कर ही नहीं सकते। बहुधा यह उस्ताद लोग बिना मुहूर्त भी मुहूर्त का कुछ उपाय निकाल ही लेते हैं। एक पूजा बृहस्पति की कराई। एक दुघड़िया मुहूर्त भी होता है, जो बहुत आवश्यकता से जल्दी के कामों में निकाला जाता है। बहुधा मुहूर्त के समय कहीं जाना न हो सके तो यारों ने उसका भी सशोधन निकाल रखा है अर्थात् प्रस्थान करके रख दिया जाता है—वह इस प्रकार, कि जाने वाला अपने दुपट्टे में पाँच मंगल पदार्थ—यथा सुपारी, मूंग, हल्दी, धनिया, गुड़ और एक चाँदी का सिक्का बांधकर जिधर जाना हो उस तरफ़ घर से दूर रख आता है। बस, फिर ३ दिन तक उस दुपट्टे के साथ जाने में कोई खतरा नहीं रहता।

शकुनों का भी इन अवसरों पर अद्भुत प्रयोग होता है। एक बार कोटा के महाराज जालिमसिंह उल्लू बोल जाने पर महलों का निवास छोड़ कर खेतों में रहने चले गए थे। इसी प्रकार

जयपुर नरेश ने मथुरा का प्रसिद्ध मन्दिर किसी अपशकुन के कारण ही अधूरा छोड़ दिया था। विद्यार्थी परीक्षा में जाने से प्रथम शकुन देखते हैं। वैद्य रोगी देखने के समय शकुन देखते हैं, चोर चोरी करने के समय शकुन देखते हैं। यह शकुन पशु-पक्षियों की बोली, उनका दायां-बायां होना व्यक्ति के सामने से होता है।

स्वप्न भी शकुनों से सम्बन्ध रखते हैं। रात को उल्लू का मकान पर आकर बोलना भारी अपशकुन समझा जाता है। एक बार एक वैद्यराज रोगी को देखने गये रास्ते में दाहिने तीतर बोला, आगे चले—ऊँट का पांव उखड़ गया। ऊँट वाले ने कहा—महाराज, ये शकुन तो अच्छे नहीं। परन्तु वैद्यजी रोगी को अच्छा कर ५०० रुपये लेकर घर लौटे। घर से चलती बार साग-सब्जी सामने आना शुभ शकुन है, पानी के घड़े मिलना शुभ शकुन हैं। खाली मिलना अशुभ है। रोटियां शुभ और आटा अशुभ है। दही शुभ है और दूध घी अशुभ हैं। सुहागन शुभ और विधवा अशुभ है। भंगी शुभ है। सुनार का मिलना अशुभ है। एक बार हम सीकर गये थे। एक आदमी दौड़ता आया, सुनारों को सामने से हटाता चला, क्योंकि राजा साहब की सवारी आ रही थी।

काने पुरुष का मिलना अशुभ है। गधा बाईं ओर और साँप दाईं ओर मिलना शुभ है। चलती बार टोकना अशुभ है। देवी-देवताओं से भी शकुन देखे जाते हैं। मूर्त्ति के ऊपर चढ़ाई माला या फूल खिसक पड़ना अशुभ है। प्रायः देवी-देवताओं के सामने आग पर नारियल की गिरी या घी डाला जाता है, यदि आग भबक उठे तो जोत जगना कहते हैं और कार्य सिद्ध का लक्षण

समझते हैं। और भी बहुत से टोटके किये जाते हैं—जिनकी गिनती नहीं हो सकती।

सर्प और छिपकली भी शकुन देखने की चीजें हैं। दो सांपों का लड़ना घर में लड़ाई होने का लक्षण है। दो साँपों का एक ही ओर जाना दरिद्र आने के समान है। सर्प को हरे वृक्ष पर चढ़ते देखना इतना अच्छा है कि देखने वाला सम्राट होगा। राजा यदि साँप को पेड़ से उतरता देख ले तो अशुभ है। सोते हुए सांप का सिर पर फन फैलाना शुभ है। सांप को घर में प्रवेश करते देखना धन प्राप्ति का लक्षण है। भूमि पर मरा सांप देखना घर में होने वाली मृत्यु की सूचना है। छिपकली का अध्याय भी बड़ा टेढ़ा है। शरीर पर ६४ स्थान हैं उन पर छिपकली के गिरने से भिन्न-भिन्न शुभाशुभ फल होते हैं। प्रातःकाल सोकर उठने पर शुभ शकुन देखने की हिन्दुओं को बड़ी फिक्र रहती है। प्रायः वे हथेली को रगड़ कर देखा करते हैं। क्योंकि पाखण्ड शास्त्र में लिखा है—

कराग्रे वसति लक्ष्मी, कर मध्ये सरस्वती।
कर पृष्ठे च गोविन्दः प्रभाते कर दर्शनम्॥

प्रायः कोई बुरी घटना होने पर लोग कहते हैं आज सुबह किस का मुँह देखा था।

छींक भी शकुन की खास निशानी है। शुभ अवसरों पर छींक होना निहायत वाहियात समझा जाता है। पर दो छींकें होना शुभ है। खाते, पीते, सोते समय छींकना शुभ है।

नजर लग जाना भी भारत भर में फैला है। लोग कहा करते हैं कि नजर ऐसी कड़ी चीज है कि पत्थर को भी तोड़ सकती है।

प्रायः बच्चों को नज़र का बड़ा ही भय रहता है। नज़र उतारने के अद्भुत-अद्भुत उपाय काम में लाये जाते हैं। माता-पिता, कुटुम्बी, सम्बन्धी चाहे भी जिसकी नज़र बच्चे को लग सकती है। नज़र से बचने के बड़े-बड़े टोटके किये जाते हैं। काजल का टीका लगाया जाता है। नोन-राई उतार कर आग में डाली जाती है। राख चटा दी जाती है। मकनों को भी नज़र से बचाने के लिये ख़ास तौर पर चिह्नित कर दिया जाता है। नज़र के डर से बहुत सम्पन्न गृहस्थ भी बच्चों को साफ़ नहीं रखते न अच्छे वस्त्र पहनाते हैं।

बहुधा जिनके बच्चे कम जीते हैं वह उन्हें माँग कर ही वस्त्र पहनाते हैं। और न जाने क्या-क्या कार्य करते हैं जिनसे मनुष्य की बुद्धि का कोई भी सरोकार नहीं है। बहुधा बच्चा होने पर उसकी नाक में छेद करके लोहे की कील डाल देते हैं। और उसका नाम नत्था या नत्थूमल रख देते हैं। यह कड़ी उसके विवाह में उसकी सास ही खोल सकती है, ऐसा मारवाड़ में रिवाज है। प्रायः जिनकी सन्तान मर-मर जाती है वह माता किसी अन्य बालक के बाल या कपड़ा कतर लेती है, और इस बात का जब उस बालक के अभिभावकों को पता लगता है तो बड़ा भारी घर युद्ध होता है।

बच्चे के रूप की तारीफ करने से उसकी माता बुरा मान जाती है। वह उसे भद्दे रूप में रखना और भद्दे नामों से पुकारना पसन्द करती है। प्रायः वह बच्चे को रोगी और दुर्बल बताया करती है। चाहे वह कितना ही मोटा-ताज़ा क्यों न हो। बच्चे के रोगी होने पर नज़र ही का सन्देह किया जाता है। फिर तो लाल

मिर्चों की धूनी दी जाती है या देवी-देवताओं का चरणामृत दिया जाता है।

इस पाखण्ड के आप ज़रा दो-एक नमूने सुनिये—एक चलते-पुज ज्योतिषी जी ने देखा कि अमुक लाला जी रोज वेश्याओं में घूमा करते हैं। उन्होंने अपनी सिद्धाई की शोहरत उनकी स्त्री तक पहुँचाई और वहाँ पहुँच भी गये। स्त्री ने उनसे अपना दुःख रोया और पति को वश में करने का उपाय पूछा—ज्योतिषी जी ने अनुष्ठान का एक ही दिन में चमत्कार दिखाने का वचन दिया और २०) लेकर चम्पत हुए। अब वे लाला जी के पास गये। उन्होंने पूछा—कहो महाराज, आज-कल दिन कैसे हैं? ज्योतिषी जी ने पत्रा खोल, उङ्गली पर गिनती गिन कर कहा—तुम्हें तो आज मारकेश का योग है। कहीं-न-कहीं जान का खतरा है। लाला जी घबरा गये। उपाय पूछा। ज्योतिषी जी ने अनुष्ठान की सलाह दी और २०) वसूल कर चलते बने। चलती बार कह गये—शाम के ६ बजे से सुबह तक घर ही में रहना। किसी से इस ग्रह का हाल न कहना, न ख़याल में लाना। उन्होंने यही किया। अनुष्ठान का हाथों-हाथ फल पाकर स्त्री प्रसन्न हो गई। दोपहर को पण्डित जी फिर पहुँचे और स्त्री से २००) ठग लाये कि पक्का प्रयत्न हमेशा के लिये कर दूँगा। पक्का इन्तज़ाम ऐसा हुआ कि बेचारी को कुछ दिन बाद और भी बुरा दिन देखना पड़ा।

एक ज्योतिषी जी को एक सेठानी ने बुलाकर कहा कि मेरा पति वेश्या के यहाँ जाता है कुछ उपाय कीजिये। उसने अनुष्ठान करने का वादा किया। उसने सेठ से कहा—आपके ग्रह ठीक नहीं,

यदि आप उस स्त्री के पास अमुक तिथि तक जायँगे तो बड़ा घाटा रहेगा। उन दिनों घाटा हो भी रहा था। लाला घर में सोने लगे। स्त्री ने प्रसन्न हो १००) नज़र कर दिये। वेश्या को पता लगा तो उसने उन्हें बुला कर बहुत लल्लो-चप्पो की और २००) नज़र किये तब ज्योतिषी जी ने सेठ से कहा—अब रास बदल गई है—उसके पास जाने से ही लक्ष्मी आवेगी। आँख और गाँठ के अन्धे सेठ जी फिर वहां जाने लगे।

एक बार एक ज्योतिषी जी ने एक ज़िमींदार को, जिसका मुक़द्दमा चल रहा था जाकर कहा—आपके ग्रह बहुत अच्छे पड़े हैं, यज्ञ करो मुक़द्दमा जीतोगे। यज्ञ में भैंसे की बलि दी जायगी। यज्ञ किया गया और जीता भैंसा आग में डाल दिया गया। कुछ दिन बाद मुक़द्दमा वे जीत भी गये। और ज्योतिषी जी को १०००) रुपये नक़द और एक दुशाला भेंट में मिला। कहां तक हम इस प्रकार के उदाहरण दें। पाठक इसी से बहुत कुछ अनुमान कर सकते हैं। इसलिये अधिक विस्तार न कर इस विषय को यहीं समाप्त करते हैं।

(१०)

धर्मनीति

जिस काम में विचार शक्ति को काम में न लाया जाय वह काम बेवकूफ़ी में दाखिल है। आज-कल प्राय: संसार भर के धर्म बेवकूफ़ ही कहलाये जा सकते हैं। क्योंकि प्राय: सर्वत्र ही यह कहा जाता है कि धर्म के काम में अक्ल को दखल नहीं है। परन्तु मैं यह जानना चाहता हूँ कि धर्म के काम में अक्ल को दखल क्यों नहीं है। धर्म क्यों इतना बे सिर-पैर की चीज़ है, क्यों युक्ति और नीति रहित है कि उसमें सोचने-विचारने से पाप लगता है।

मैं यह कहता हूँ कि मस्तिष्क की सम्पूर्ण शक्ति का यदि कहीं पर उपयोग हो सकता है—तो वह धर्म ही है। धर्म ही को गीता ने कर्म कह कर पुकारा है। कौन काम कर्म है, कौन नहीं—गीता कहती है कि यह निर्णय करने में बड़े-बड़े धुरन्धर शास्त्री विद्वान भी मोहित हो जाते हैं।

हमने पीछे किसी अध्याय में कणाद मुनि के वैशेषिक सूत्र "यतो अभ्युदय निःश्रेय सिद्धीः स धर्मः" इस पर प्रकाश डाला है। इस वाक्य के साथ वहां जो और पंक्तियां लिखी हैं उन पर प्रत्येक पाठक को भली भांति मनन करना चाहिये।

उससे अधिक मैं यह कहना चाहता हूँ कि सब से उत्तम धर्म वही है, जिसमें नीति की मर्यादा का अधिकाधिक पालन किया गया हो। यद्यपि आज संसार-भर के मनुष्य नीति से धर्म को पृथक् किया चाहते हैं। परन्तु मेरी राय में यह असम्भव है।

नीति का निर्माण रीतियों पर चला है। सृष्टि के आदि से आज तक लोग अच्छी रीतियां चलाते और बुरी छोड़ते रहे हैं। बहुधा ऐसा होता है कि लोकलाज या दबाव से बहुत मनुष्य कुछ बुरे काम नहीं करते और कुछ अच्छे कर गुज़रते हैं। यद्यपि बुरे कामों के लिए उनके मन में इच्छा और और भले कामों के लिये अनिच्छा रहती है। परन्तु कुछ ऐसे भी मनुष्य होते हैं जो मरने जीने या हानि-लाभ की तनिक भी परवाह बिना किए, नीति-मार्ग पर चले ही जाते हैं। इन दोनों प्रकार के मनुष्यों में अन्तर तो होता ही है। और वह अन्तर यही है कि अन्तरात्मा से काम करने वाले लोगों की नीति ही धर्म नीति है। यदि नीति और धर्म का समावेश न किया जायगा तो नीति कभी भी अच्छे मार्ग पर न चल कर कुराह पर ही चलेगी। वास्तव में बीज धर्म है और नीति का जल सिंचन करने से ही उसमें शुभ अंकुर लगता है। केवल नीति के परिणाम-स्वरूप ही हम अच्छे विचारों का निर्णय कर सकते हैं। मनुष्य का साधारण ज्ञान हमें बताता है कि दुनिया कैसी है— परन्तु नीति हमें यह बताती है कि वह कैसी होनी चाहिए। और धर्म हमें उस लक्ष्य तक पहुँचाता है।

मनुष्य को उचित है कि वह शरीर, मन और मस्तिष्क की अलग-अलग जाँच करे। वह इस बात पर भी ग़ौर करे कि अन्याय

स्वार्थ, दुष्टता और अभिमान के क्या परिणाम होते हैं। यदि मनुष्य धर्म और नीति को संयुक्त करके विचारों का एक नक़शा (प्लान) तैयार करले और फिर उन पर वह अमल करे तो वह सही उतरेगा। नक़शा बताता है कि घर कैसा बनेगा, घर बनजाने पर नक़शा व्यर्थ है। इसी प्रकार नीति और धर्म के विपरीत आचरण करके नीति पर विचार करना व्यर्थ है।

नीति का नियम यह है कि हमारे अनुभव में जो सचाइयां आती जायँ उनके आधार पर हम अपने आचरणों को बनाते जायँ। जो मार्ग सच्चा है, उसे ग्रहण ही करना चाहिये। इसका यह अर्थ है कि हमें कट्टरता के सभी विचार त्याग देने चाहियें। और कट्टरता को जो आजकल के धर्मों का प्रधान लक्षण है, नीति मूलक धर्म का सबसे बड़ा दुश्मन समझना चाहिए।

उत्तम धर्म-नीति क्या है—इस पर विचार करना भी आवश्यक हैं। अमुक कार्य से हमारा यह लाभ हो सकता है, परन्तु यह आवश्यक नहीं कि वह धर्म-नीति से पूर्ण है और इसी प्रकार धर्म-नीति के कार्य के लिए यह आवश्यक नहीं कि वह लाभदायक हो। इसका अर्थ यह है जैसा कि बहुधा लोग किया करते हैं कि वे अपनी भलाई के काम करते हैं। धर्म-नीति का आधार न तो मनुष्य की इच्छा पर है, और न स्वार्थ ही पर। ऐसे नीति-निष्ठ और धर्मात्माओं का अभाव नहीं जिन्होंने सत्य शोधने के लिए कष्ट सहे और जानें दीं। इससे हम इस निर्णय पर पहुँचते हैं कि धर्म वे निर्णय हैं जो मनुष्य के मत, स्वार्थ और इच्छा से भिन्न हैं। और उनके आधीन होना मनुष्य के लिए कर्तव्य है।

धर्म-नीति के तीन मूल सिद्धान्त हैं। १—सत्य, २—भलाई, ३—ईश्वरीय नियम। ये तीनों चीज़ें जगत् में सदैव रहेंगी, चाहे सारा पृथ्वी के मनुष्य शैतान या अधर्मी क्यों न हो जायँ।

अनीति ही अधर्म है। पहले वह अनीति धर्म से पृथक् दीख पड़ती है, पीछे वह धर्म-स्वरूप को प्रकट कर देती है। अन्याय और अन्धविश्वास आंधी की भांति उठते और अन्त में नष्ट हो जाते हैं। सीरिया और बेबिलिन में अधर्म का घड़ा भरते ही फूट गया। रोम अधर्म नीति पर चलने लगा और नष्ट हो गया। बड़े-बड़े रोमन महापुरुष भी उसकी रक्षा न कर सके। ग्रीस की चतुर प्रजा ग्रीस को अनीति के हाथ से न बचा सकी। फ्रांस का विद्रोह अनीति के ही विरुद्ध था। एक विद्वान् का कहना है—अनीति को राजसत्ता सौंप दो—वह टिक नहीं सकेगी।

क्रान्ति एक स्थिर सत्य है जो धर्म या नीति के विपरीत फैले जाल को नष्ट करती है। क्रान्ति सामाजिक जीवन का नीरोगीकरण है।

हम सुक़रात, मसीह, कृष्ण, दयानन्द और ऐसे ही हज़ारों-लाखों मनुष्यों को इसी क्रान्ति की भेंट होते देखते हैं। जिन्होंने मिथ्या विश्वासों के विपरीत आवाज़ उठाई थी, जिनके कारण समाज निस्तेज और प्रभाशून्य हो गया था। तत्कालीन सत्ताधारियों ने इन महात्माओं को खूब कष्ट दिया। मसीह को अपराधी के कठहरे में खड़ा कर, एक पुरुष ने गम्भीरतापूर्वक उसे अपराधी कह कर सूली पर चढ़ा दिया। महा तत्वदर्शी सुक़रात को सामने खड़ा कर एक विद्वान् विचारक ने उसे विष पीकर मर

जाने की आज्ञा दे दी थी। आज महात्मा गांधी अपना पवित्र और बहुमूल्य जीवन जेल में व्यतीत करते हैं। परन्तु ईसा की मूर्ति आधे संसार के राज मुकटों के लिये बन्दनीय है।

अन्ततः हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि सत्य, न्याय, और ईश्वरीय नियमों का पालन करने के लिये हमें निरन्तर क्रान्ति करनी चाहिए। और कभी अपने व्यक्तिगत लाभ हानि को इससे सम्बन्धित नहीं होने देना चाहिए।

यदि ऐसा किया जायगा तो मनुष्य जाति का सच्चा धर्म मनुष्य पर सौभाग्य और सुख की वर्षा करेगा और सारे संसार के मनुष्य परस्पर मिल कर सच्चा भ्रातृभाव प्राप्त करेंगे।

❀ समाप्त ❀